शाश्वत तीर्थ क्षेत्र सम्मेद शिखर जी

अध्यात्म तीर्थधाम (स्वर्णपुरी) , सोनगढ़

जैनशासन का गौरव

आत्मसाधिका

महासती अंजना

अहो! स्वभाव की महिमा इतनी अपूर्व है कि
तीन लोक की प्रतिकूलताएँ एक साथ भी उदय में आ जायें
तो भी उसका सामना करने की सामर्थ्यआत्मा में है।

प्रथम संस्करण– 3000

श्री पार्श्वनाथ दिगम्बर जिनबिम्ब पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव के अवसर पर

शाश्वत सिद्ध क्षेत्र सम्मेद शिखर जी

24 नवम्बर से 29 नवम्बर 2012 तक

प्राप्ति स्थान

श्री सूरज बेन अमुलख भाईसेठ स्मृति ट्रस्ट
302, कृष्ण कुंज प्लॉट नं. 30
वी.एल. मेहता मार्ग, विलेपार्ले (वेस्ट) मुम्बई - 400056

❀

आचार्य कुन्दकुन्द फाउंडेशन,
85, चैतन्य विहार, आर्य समाज की गली
रामपुरा कोटा (राज.)

❀

श्री महावीर दिगम्बर जिन मंदिर ट्रस्ट
197/198, चिमनगंज मंडी, उज्जैन

© सर्वाधिकार सुरक्षित

न्यौछावर राशि
₹20

प्रकाशन पुरस्कर्ता
आयुशी- आगम-तन्मय शेठ, पार्ला मुम्बई
पूजा-रिद्धिमा, वाशी मुम्बई
सहज - प्रदीप शाह, सांताक्रूज मुम्बई
सहज-परिणति, बिलासपुर
आंचल, नमन, अजमेर
श्री राजकुमार जी - लीला देवी पाटनी, इम्फाल
श्री आनंदी लालजी - कांतादेवी सरावगी, गोहाटी

प्रपौत्र चिरन्जीव सहज के जन्मोत्सव पर

श्रीमति पुष्पाबेन बोरीबली की और से सप्रेम भेट

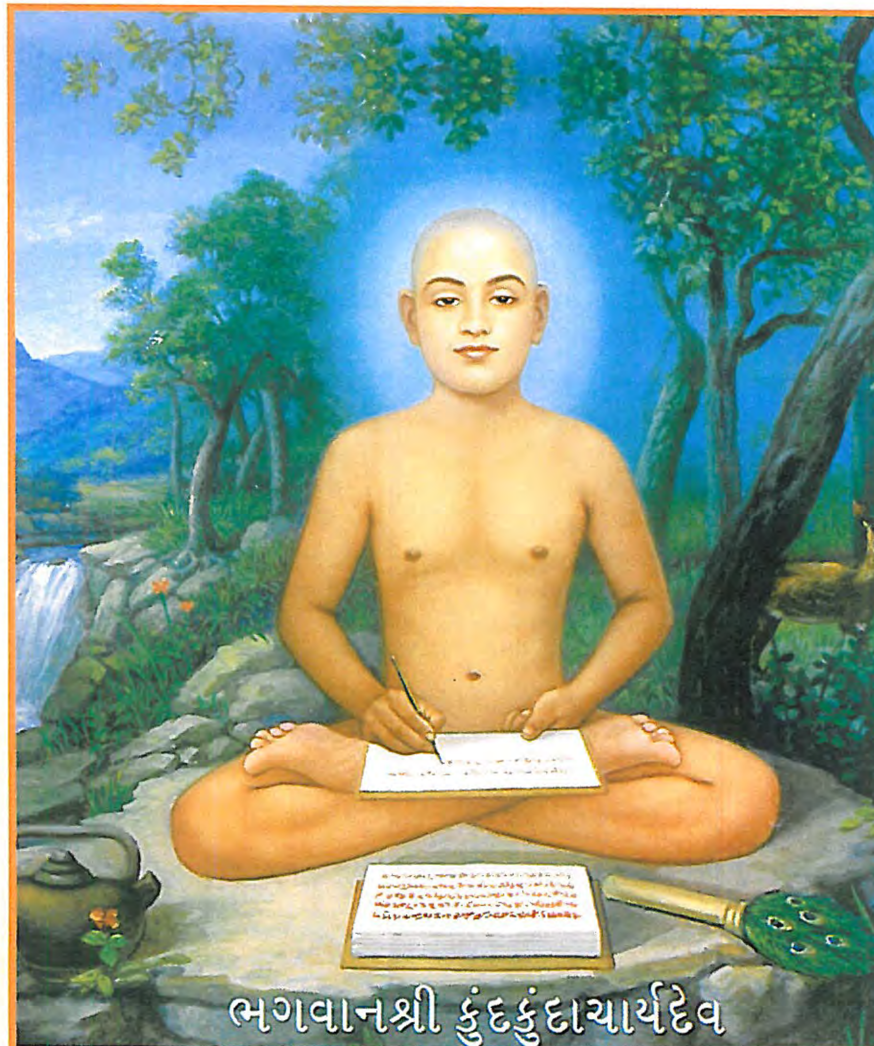

❖❖❖ प्रकाशकीय निवेदन ❖❖❖

जैन पौराणिक कथा 'जैन शासन की गौरव महासती अंजना' नामक प्रस्तुत ग्रंथ प्रकाशित करते हुये हमें अत्यंत प्रसन्नता का अनुभव हो रहा है।

वीतरागी जिनेन्द्र परमात्मा की दिव्य ध्वनि में प्रवाहित जिनवाणी चार अनुयोगमय है जिसमें प्रथमानुयोग द्वारा महापुरूषों के आत्म साधनामय जीवन का वर्णन करके आत्म हित के मार्ग में लगने की प्रेरणा दी गई है।

ज्ञानी जनों की परम्परा से प्राप्त श्रुत का हार्द /रहस्य खोलने में समर्थ श्री पूज्य गुरूदेव श्री कानजी स्वामी जिन्होनें इस कलिकाल में सनातन सत्य मार्ग का उद्घाटन किया,जैन शासन का जीर्णोंद्धार किया उनसे प्राप्त क्रमबद्ध पर्याय, पर्याय की स्वतंत्र योग्यता, पुण्य–पाप की तुच्छता, विराधक परिणामों की भयंकरता इत्यादि पर प्रकाश डालकर जगत के जीवों को आत्म सन्मुख्ता की पावन प्रेरणा करते हुये अद्‌भुत वचनामृत इस लघु कथा में यथावसर उर्घृत हुये हैं।

इन से प्रेरणा पाकर जहाँ हम अनेक विपरीत परिस्थितियों में वीतरागी तत्वज्ञान की अडिग आस्था से आत्मकल्याण के पथ पर लगे रहने की प्रेरणा प्राप्त करते हैं, वहीं संसार के इन चित्र विचित्र प्रसंगों से सहज ही अंतरंग में वैराग्य भाव का बल ग्रहण करते हैं। इस तरह यह एक उपयोगी प्रयास है।

प्रस्तुत ग्रंथ के संकलन में पदम पुराण, साधना और वाणी,कर विचार तो पाम, वचनामृत सार, मुक्तिदूत आदि ग्रंथों का सहयोग हमें इस महतकार्य में मिला है उनके प्रति हम कृतज्ञ हैं

प्रस्तुत ग्रंथ में प्रेरणा प्रोत्साहन एवं वात्सल्य सहित सूक्ष्म मार्गदर्शन , परिशोधन एवं संपादन कार्य श्री विमल चंद जी झाँझरी, श्री राजेन्द्र कुमार जी जबलपुर, श्री अरविंद कुमार जी करहल, श्री उम्मेद भाई मोदी (सोनगढ़), श्री प्रकाश चंद जी दादा मैनपुरी, श्री संजय शास्त्री मंगलायतन (जेवर), पं. नीलेश कुमार जैन मुम्बई, इन सभी का अमूल्य सहयोग प्राप्त हुआ है व अनेक भाई बहनों का प्रत्यक्ष एवं परोक्ष सहयोग हमें निरंतर मिलता रहा है, तदर्थ हम सभी का ह्रदय से आभार व्यक्त करते हैं। आत्मकल्याण के इच्छुक हम सभी साधर्मी जन जैन शासन के इस लघु पुराण का अमृत पान कर अतीन्द्रिय निराकुल सुख को प्राप्त हो ऐसी मंगल भावना के साथ

प्रकाशक परिवार

❖❖❖ अहो भाग्य ❖❖❖

'जैन शासन का गौरव महासती अंजना' की प्रेरणा दायक, स्वाश्रय पूर्वक समतारस से ओतप्रोत घटनाएँ अद्‌भुत दृढ़ता और शांति देती है

आत्मार्थी ब्र. शशि जैन, अभिलाषा जैन, सोनगढ़, ब्र. नीलिमा जैन युगल, कोटा एवं ब्र. ज्ञानधारा झाँझरी, उज्जैन ने अत्याधिक मेहनत से सन्मार्ग दर्शक, तत्वप्रेरक, रूचि वर्धक, समाधिदायक, शब्द ब्रम्ह से संजोया है।

चकवा चकवी के विरह को देखकर जैसे पवनंजय को अंजना सती का विरह सताया और पुनः मिलन की धुन समा गई वैसे ही वीतरागी जिन शासन में ह्रदय के तार झंकृत करने वाली जिनवाणी माँ के नाद को सुनकर निकट भव्य जीव की अनादि से ध्रुव भगवान आत्म से बिछुड़ी परिणति– निज परमात्मा से मिलने को आतुर वज्र पुरूषार्थ से सहज ही आ मिलती है। मानो संसार दुख की कहानी ही खत्म हो जाती है।

जयवंत वर्ते वीतरागी धर्म, जयवन्त वर्ते वीतरागता के उपासक आराधक.....

पं. श्री विमलचंद जी झाँझरी, उज्जैन

अपनी बात....

जिन आज्ञा हो शीस पर नित हमारे, समाधान हो ज्ञानमय सुखकारी।
गुरूवर का गौरव सदा हो ह्रदय में, बहे ज्ञान धारा सुआनंदकारी।।

जो अपनी आत्मा को आधार बनाते हैं, ऐसे ज्ञानी जीव सारे जगत के लि[ए] आधार भूत हो जाते हैं। उनके भवाताप हारी वचन स्मरण में आते ही दु:ख कपू[र] की भाँति उड़ जाते हैं। ज्ञानी जीवों की श्रृंखला में हमें वर्तमान में पूज्य गुरूदेव श्री कानजी स्वामी का समागम हमारे पूर्व के संस्कार से एवं वर्तमान की विशे[ष] विशुद्धि से एवं भविष्य की भली होनहार से प्राप्त हुआ है। जिनका एक–एक क्षण स्वभाव की साधना के लिये समर्पित था, जिनका हर वचन सच्चे देव– शास्त्र- गुरू एवं स्वभाव की महिमा जगाने के लिये ही निकलता था। जिनकी वजह से ह[में] आज हजारों वर्ष पहले की शील शिरोमणि अंजना जी की भी निकटता प्राप्त हु[ई] है। अंजना जी को पति का आधार छूटने पर अस्थिरता के कारण किंचित बाह्य [में] रूदन दिखाई दिया था, तो भी अंदर में अपना आधार निज चैतन्य स्वभाव ही है ऐसा समझपूर्वक रूदन आदि भय के भाव की कर्ता नहीं बनीं, अपितु निर्भय औ[र] ज्ञाता ही रहीं।

स्वभाव दृष्टि का हकार और पर्याय बुद्धि का नकार, आत्मा वर्तमान पर्या[य] जितना नहीं अपितु त्रिकाल अखण्ड ज्ञान मूर्ति है ऐसी श्रद्धा ही द्रव्य दृष्टि क[ा] स्वीकार है और पर्याय बुद्धि का अस्वीकार है। ज्ञानी को स्वभाव दृष्टि की अधिकत[ा] के कारण समभाव ही वर्तता है। धर्मी अंजना स्वभाव दृष्टि के जोर से निर्भय थ[ीं] तथा साथ ही ज्ञान है वह पर्याय के राग के कण –कण को जैसा है वैसा जानता है।

अंजना जी को अपने ज्ञानानंद स्वभाव की अटूट श्रृद्धा ज्ञान से सारे प्रसं[ग] ज्ञान के ज्ञेय तो दिखते ही थे, साथ ही उस समय संबंधी ज्ञान की पर्याय भी ज्ञेय [ही] दिखती थी। ज्ञान स्वभाव में ऐसी अचल वन के खड़ी थी कि उन्हें कोई दोषी नह[ीं] दिखता था, कोई प्रतिकूल दिखाई नहीं देता था। उन्हें जगत दुखी देखता थ[ा] लेकिन उनको दुख का परिणाम भी ज्ञान में परज्ञेय तरीके भासित होता था। व[े] अपने क्रमशः होते हुये परिणाम की भी अकर्त्ता थी उनको जगत का कोई भ[ी] पदार्थ परिणाम वाला, परिणाम का कर्त्ता दिखता ही नहीं था।

निजानंद का वेदन करते, कर्मोदय से खिन्न न हों।
वर्ते निज में तृप्त परिणति, भवाताप उत्पन्न न हो।।

ज्ञानी जीवों के द्वारा तीर्थंकरों की वाणी हमें आज भी प्राप्त हो रही है कि– [...]

कर्मरूपी विषवृक्ष के फलों मेरे बिना भोगे ही खिर जाओ।

धर्म स्वयं है सत्य, सत्य का दृष्टा भी है।
धर्म स्वयं है अभय, अभय का सृष्टा भी है।।
ज्ञान और चारित्र, धर्म की ही परिभाषाएँ।
और धर्म अन्तं विकार का हर्त्ता भी है।।

जिन आचार्य भगवंतों एवं विद्वानों के शास्त्रों का सहयोग हमें इस महतकार्य में मिला है उनके प्रति हम कृतज्ञ हैं। प्रमाद या अज्ञानता वश रह गई त्रुटियों की ओर ध्यान आकर्षित कर विज्ञजन हमारा उपकार अवश्य करेंगे, संपूर्ण विश्व में जिनवाणी का प्रचार-प्रसार हो, जिनशासन निरंतर अगाध गति से चलता रहे ऐंसी मंगल भावना के साथ.......।

ब्र. शशि जैन, अभिलाषा जैन, सोनगढ़

❖❖❖ संपादकीय ❖❖❖

आत्मसाधिका धर्माराधिका सती अंजना करूँ नमन।
धन्य तुम्हारा पौरूष साहस, धीर वीरता अनुमोदन।।
अहो अकर्त्ता ज्ञायक आतम, जबसे तुमने पढ़ी पढ़ाई।
विपदाये आओ स्वागत है, आकुलता छूने नहीं पाई।।
पढ़ो पढ़ाओ धर्मकथानक, जीवन में समता अपनाओ।
दोष नहीं देना है बंधु निज स्वभाव साधन अपनाओ।।

साधिका सती अंजना को जब सासु केतुमती ने कलंकनी समझकर क्रूरता पूर्वक निकाल दिया और माता पिता ने भी जब अपनी भृकुटी टेड़ी करली, शरण नहीं दी, तब भी अंजना अशरण नहीं है। उन्हें अभी भी और सदा ही शुद्धात्मा और पंच परमेष्ठी की शाश्वत शरण हर समय उपलब्ध है। ज्ञानी जन प्रतिकूलताओं में वैराग्य जगाते हैं, अनुकूलताओं का सद्उपयोग कर साधर्मी जनों में लुटाते हैं।

शासन नायक भगवान महावीर की दिव्य देशना में से लघु अंश पौराणिक कथानुयोग से चुना गया यह पुष्प सती अंजना का जीवन चरित्र आपके कर कमलों में प्रस्तुत है आज जैन जगत के भव्य मुमुक्षुओं को यह पुष्प समर्पित कर हम अत्यन्त प्रसन्नता का अनुभव कर रहे हैं।

अत्यन्त प्रेरणादायक वैराग्य वर्धक सन्मार्गदर्शी इस कथानक को हजार बार पढ़ें तो भी तृप्ति नहीं होगी। आँख से आँसू बहते-बहते ही पढ़ा जा सकता है। सभी लाभ लें जीवन धन्य बनायें।

पं. श्री राजेन्द्र कुमार जी जैन, जबलपुर

जैनशासन का गौरव

आत्मसाधिका

महासती अंजना

मंगलाचरण

मंगलमय मंगलकरण, आत्मस्वरूप महान।
आत्मसाधना से हुए, अर्हन्त सिद्ध भगवान।।
आत्मसाधिका अंजना, परमेष्ठी उर धार ।
शील शिरोमणि हो गई, आगम कहे उचार।।
कर्म उदय प्रतिकूलता, बनकर आयी पहार ।
डिगी न मुक्ति-पंथ से, धन्य-धन्य अवतार।।

अंजना.......अंजना.......
अरे, कौन अंजना?
श्री मुनिसुव्रतनाथ तीर्थंकर युग की,
श्रेष्ठ आराधिका अंजना।
तद्भव मोक्षगामी, चरमशरीरी
हनुमान की जन्मदात्री माँ अंजना।
उपसर्ग विजेत्री अंजना, समताधारिणी अंजना।
मुनि भगवन्तों की पथानुगामिनी अंजना।
भावी भगवान अंजना।
हाँ, अंजना सती की कथा पढ़कर, जागता है आत्मबल
कर्मों से लड़ने का प्रकट होता है संबल।
विराधना भूल से भी न हो
खिल जाता ऐसा सम्यग्ज्ञान का कमल दल।

फाल्गुन माह के अष्टाह्निका महापर्व में परिणामों की निर्मलता के लिए अकृत्रिम चैत्यालयों की वंदना करने देव गण नंदीश्वर द्वीप की वंदना करने जा रहे हैं।

धर्मी जीव स्वभाव की महिमा बढ़ाने के लिये एवं विषय–कषायों के निमित्तों से बचने के लिए अति उल्लास पूर्वक धर्म, धर्मायतनों एवं धर्मी जीवों के निकट जाने की भावना भाते हैं।

इसी पावन अवसर पर महेन्द्रपुर के राजा महेन्द्र अपनी पुत्री अंजना सहित भावों की कलुषता मिटाने के हेतु, जिनबिंबों के दर्शन–पूजन के अर्थ, मन में अति उल्लास और भक्तिभाव से वंदना हेतु कैलाश पर्वत पर पहुँचे।

राजा प्रह्लाद भी अति प्रीति एवं भक्तिभाव से अपने पुत्र पवनंजय के साथ वहाँ आये हुए हैं।

वे दर्शन–पूजन से निवृत्त हो गिरिराज पर ही घूम रहे थे कि राजा महेन्द्र की दृष्टि उन पर पड़ी।

राजा महेन्द्र ने अभिवादन करने के बाद राजा प्रहलाद से कहा – हे राजन् ! अपनी पुत्री अंजना का विवाह आपके पुत्र चिरंजीव पवनकुमार के साथ हो जाये तो कितना सुखद रहेगा?

सुनकर राजा प्रहलाद बोले – हे राजन्! यह तो मेरे पुत्र का सौभाग्य होगा। मेरी ओर से इस संबंध को आप पक्का ही समझिए।

फिर तीन दिन बाद उसी मानसरोवर के तट पर ही विवाह होना भी सुनिश्चित हो गया।

कुमार पवन मित्र प्रहस्त से बोले– हे मित्र ! तीन दिन का विरह मुझसे सहन नहीं हो रहा है। रात होते ही दोनों मित्र गुप्त रूप से विमान द्वारा अंजना के महल में जा पहुँचे।

जिस प्रकार विनयशील जिज्ञासु जीवों की धर्मानुरागी गुरूजनों के निकट उनकी वात्सल्य भरी दृष्टि की एक झलक से ही समस्त जिज्ञासायें शांत हो जाती हैं, उसी प्रकार अंजना की मात्र एक झलक देखने से ही कुमार पवन की तृष्णा तृप्ति में परिवर्तित हो गई।

तभी अंजना की सखी बसंत अंजना से कहने लगी – कितना अच्छा

नाम है पवन ! सारे जगत से साफ बचकर निकल जायेंगे, वास्तव में वे भव्य आत्मा हैं।

अंजना के झुके हुए नयन देखकर बसंत पुनः बोली – अभी तो नाम मात्र के उल्लेख से लज्जावंत हो रही हो, पा जाओगी तो न जाने क्या होगा?

तभी ईर्ष्या से जली सखी मिश्रकेशी कहने लगी, तुम्हारा संबंध पवनकुमार से हुआ सो तो ठीक ही है। यदि विद्युत्प्रभ से हुआ होता तो बात ही कुछ और होती।

मर्यादित प्रसन्नता में तल्लीन अंजना ने सखी मिश्रकेशी के अमर्यादित वचनों को सुना ही नहीं।

यह सुनकर कुमार पवन सोचने लगे कि अंजना ने इन अमर्यादित वचनों का निषेध क्यों नहीं किया?

जिस प्रकार जीव श्री गुरूओं के अंतरंग वात्सल्य को नहीं परख पाते, उसी प्रकार कुमार भी अंजना के मन के समर्पण एवं उनकी गंभीरता को नहीं परख सके और उनके अहं की भूमि डंवाडोल हो गई।

जैसे सच्चे देव–शास्त्र–गुरु के प्रति मन में भी कोई विराधना का भाव उत्पन्न हो जाने पर सम्यग्दर्शन दूर से ही विदा हो जाता है, वैसे ही कुमार के मन से अंजना के प्रति अनुराग विदा हो गया।

वास्तव में जीव को मान एवं लोभ की पूर्ति में सुख के पक्ष से चलने वाले विकल्प ही वर्तमान में दुख एवं भविष्य में दुर्गति के कारण हैं, परंतु जीव परद्रव्यों एवं पूर्व कर्मोदय आदि को ही दुख का कारण मानता है।

मित्र प्रहस्त गहराई से कुमार पवन की मुख मुद्रा का आंकलन कर रहे हैं, देख रहे हैं कि पूर्व सी सरलता आज पवनंजय में नहीं है।

वहाँ से तुरंत ही वापस आकर कुमार आदेश के स्वर में बोले –

प्रहस्त ! मैं मानसरोवर तट पर कल का सूर्योदय नहीं देखूँगा।

कुमार पवन के संगी–साथी इस अप्रत्याशित घोषणा से अचंभित हो गये, यह अकारण प्रस्थान की आज्ञा क्यों ?

अंजना का निवास स्थल निकट ही होने से कुमार पवन के प्रस्थान का कोलाहल उनके कानों में भी गूँजा।

अपार विस्मय से अंजना की आँखें आकाश की ओर टिक गई। उचित कारण तो न समझ सकीं, विचारने लगी– अहो! देव–गुरु–धर्म की असीम करुणा एवं वात्सल्य से अपनी परिपूर्णता का जो विश्वास आया है, उसके बाद न तो किसी की अपेक्षा है, न उपेक्षा।

उधर महाराज महेन्द्र, पिता प्रहलाद तथा मित्र प्रहस्त सभी कुमार के पास पहुँचकर यही सोचकर समझाने लगे कि जिस प्रकार जीव को विश्व की कोई शक्ति समझाने में समर्थ नहीं, उसकी भली होनहार ही उसे हित के मार्ग में ला सकती है, उसी प्रकार कुमार माने तो स्वयं से ही मानेंगे।

पिता एवं पितृतुल्य राजा महेन्द्र के वात्सल्य युक्त वचनों से कुमार नम्रीभूत हो गये। सज्जन पुरुष विपरीत विचारों को निर्णय के लायक नहीं बनाते, अत: गुरुजनों की गुरुता का उल्लंघन करने में स्वयं को असमर्थ पाकर प्रस्थान निरस्त कर दिया।

परिणय की लगन तिथि भी आ पहुँची, पाणिग्रहण की बेला भी आ पहुँची।

परिणय सम्पन्न हुआ और दूसरे दिन दोनों राजपरिवार दल–बल सहित अपने–अपने नगरों को प्रस्थान कर गये।

{ 2 }

आदित्यपुर नगरी में प्रवेश करने पर प्रजा ने उनका भावभीना स्वागत किया, तत्पश्चात् युवराज्ञी अंजना को रत्नकूट प्रासाद में अति उत्साहपूर्वक पहुँचाया गया।

प्रथम ही दिन.... कुमार पवन आ रहे हैं.... आने वाले हैं, लेकिन रात्रि के चारों प्रहर बीत जाते हैं। कुमार नहीं आये, नहीं आये। अब नहीं आयेंगे – कुमार का ऐसा निर्णय अगले ही दिन अंजना के पास आ गया।

जहाँ अज्ञानी जीव सुख के लिए पंचेन्द्रिय के विषयों की अभिलाषा करते हैं, वहीं ज्ञानी जीव सुख के लिए ज्ञान की अभिलाषा करते हैं।

स्वरूप अस्थिरता वश मन में खिन्नता भी आ जाती थी, लेकिन साधिका अंजना सर्व जगत के जीवों के प्रति वात्सल्य रखते हुए अंश मात्र भी किसी के भी गुण देखकर उल्लास पूर्वक रोमांचित होती, दुखी जीवों के दुख देखकर अनुकंपित होती एवं सारे राज्य वैभव के प्रति अत्यंत निष्पृह बुद्धि

रखती हुई, उदय में आये हुए कर्मों को भोगते हुए नये कर्म न बँधें इसके लिए सचेत रहती थी, अत: शुभाशुभ कर्म के उदय के समय हर्ष–शोक में न पड़ते हुए भोगने से ही छुटकारा समझकर समभाव बढ़ाती।

साधिका अंजना हमेशा अपने दोष खोजती, पूर्व में हुए जिनशासन के प्रति विराधक परिणामों को धिक्कारती, वर्तमान में जिनशासन के मिलने में अति सौभाग्य समझती।

वसंत – कुमार पवन के बिना कैसा सूनापन दिखता है?

अंजना – बहिन! संयोगों के बिना शांति का अनुभव होता है, सूनेपन का नहीं।

अरे! जिनकी निकटता में हम अपने स्वरूप को भूलते हैं, ऐसे पाँचइन्द्रिय के विषय, विषय के आयतन एवं विषयानुरागी जीवों के प्रति आकर्षण एवं समर्पण ही दुर्भाग्य है और जिनकी निकटता में हमें अपनी प्रभुता का स्मरण होता है – ऐसे धर्म, धर्मायतन, धर्मी जीवों के प्रति संपूर्ण समर्पण में ही अपना सौभाग्य है।

इन दिनों अंजना मोहियों की ममता से सावधान रहती हुई निर्भय सिंहनी की भाँति अकेले ही रहकर अपने में तृप्त, भगवन्तों को भक्ति से निहारती एवं स्वरूप में तृप्ति पाकर जिनवचनों में अति आदरपूर्वक अपना चित्त लगाती।

धन्य है साधिका अंजना! जिन्होंने अपने में अपनापन स्थापित करके अपने को भरा–पूरा अनुभव कर लिया है और अंतर में विश्व के समस्त जीवों को भी जो निरपेक्ष वात्सल्य देने की शक्ति प्रकट हुई है, उससे सारा विश्व भी अपने को भरा–पूरा अनुभव कर सकता है। अरे! धिक्कार है स्वार्थी जगत–जनों का संग, जहाँ सब जीव निरपेक्ष वात्सल्य के बिना अकेलेपन की वेदना में जलते रहते हैं।

चेहरे पर विराग, क्रियाकलापों में सजग, हृदय में प्रभु के प्रति अनुराग, इन रंगों ने कैसी अद्‌भुत छटा बिखेरी है।

साधिका अंजना को कषाय करने का अभिप्राय एवं विकल्पों का पक्ष चले जाने से किसी भी बात को बार–बार कहने का आग्रह नहीं, बात को मात्र एक बार धीमे से कहती है और सुनने वाला भी धन्यता का अनुभव करता है। जब विकल्पों में से ही अपनेपन का पक्ष चला गया तो विकल्पों के अनुसार परिणमन में अहंकार कहाँ? और विकल्पों के प्रतिकूल परिणमन में दीनता कहाँ?

इच्छा ही दुख है। सुख इच्छा पूर्ति में नहीं, इच्छाओं को मिटाने में है। हमारे धर्म के फल में मान और लोभ की पूर्ति होती रहे, ऐसा न हो, बल्कि भगवन्तों के चरणों में झुकने से सारी दुनिया को झुकाने का भाव ही मिट जाये।

हमारी प्रभुता तो सबको अपनी इच्छा के अनुसार चलाने में नहीं, बल्कि किसी को भी अपनी इच्छानुसार चलाने का विकल्प ही पैदा न हो इसमें है।

परित्यक्त उपेक्षित अंजना पाँच इन्द्रियों के विषयों से उदास होकर भगवंतों की दास बनकर अपने में ही वास करना चाहती है।

जब कभी अंजना के आँसू झरते, तब सखी वसंतमाला का मन सहानुभूति से भर जाता, लेकिन अद्‌भूत आत्मशक्ति से ओत –प्रोत अंजना सखी को समझाती – जीजी! दुनिया की आँखों में अंजना असहाय जरूर है, मगर आप स्वयं हमें इतनी कमजोर एवं रक्षा की पात्र मत समझो, हम अपना ऋण चुकाने के लिए ही तो यहाँ रूके हैं। अब तो अपना हित प्रभु–चरणों की साक्षी में स्वयं की प्रभुता में संपूर्ण रूप से समर्पित होने में ही दिखता है।

अंजना विचारमग्न है –

अनादिकाल से जीव सुख की चाह में विषयों के पीछे दौड़ता–दौड़ता अनंत दुखों को वेदता रहा है। यदि कभी सच्चे सुख को बताने वाले भी मिले तो अपने स्वरूप में शंका रखकर अटक गया। कितनी ही बार सच्चा सुख दिखाने वालों की अवमानना करके अपना सच्चा स्वरूप पाने में अटका। पुण्योदय से यह मानव देह प्राप्त किया, जिनशासन प्राप्त किया। यदि अभी भी पुरूषार्थ नहीं किया तो किस भव में करेगा?

{ 3 }

महाराजा रावण का राजा वरूण के साथ युद्ध प्रसंग बन गया। वे राजा प्रह्लाद को सहायता के लिए पत्र लिखते हैं। कुमार पवन युद्ध में जाने को तैयार होते हैं, माता–पिता से आज्ञा प्राप्त करके, परिजनों को धैर्य बँधाकर, पवनंजय अंजना को तीव्र उपेक्षा भाव से देखते हुये युद्ध के लिए प्रस्थान कर जाते हैं। अंजना विचारमग्न है –

अहो! यह कर्मोदय जनित परिस्थितियाँ पूर्व में हुई जिनशासन की विराधना का फल है। जिस जिनशासन की कृपा से जो जड़–वैभव मिलता है, उसी वैभव के मद में उसी जिनशासन की विराधना होती रहती है। अब तो एक ही भावना है कि कैसे जिनशासन की ओर झुकूँ और कैसे जिनशासन की सेवा में सावधान होऊँ।

सुख तो कषायों के मिटने में ही है। अब न किसी की ओर झुकना है, न झुकाना है, अपने में तृप्त भगवंतों को देखकर स्वरूप में तृप्ति पाकर अपने सहजानंद में रहना है।

सैन्य–दल ने मानसरोवर तट पर पहुँचकर ही अपना पहला पड़ाव डाला। पवनकुमार मानसरोवर की सुन्दरता का अवलोकन करने निकल पड़े। सरोवर के स्वच्छ जल में कमल खिले हुए हैं। हंस एवं सारस क्रीड़ाएँ कर रहे हैं। पास ही एक चकवा–चकवी का जोड़ा भी प्रेमालाप में मग्न है। सूर्यास्त हुआ और चकवा–चकवी भी बिछुड़ गये। साथी के वियोग से संतप्त चकवी अकेली आकुल– व्याकुल हो रही है।

वह बार–बार अपनी चुंचुका से कमल दल को कुरेद–कुरेद कर चकवे

को ढूँढ रही है। इस समय कमल का स्वाद भी उसे विषतुल्य प्रतीत हो रहा है। जल में पड़ रहे अपने बिम्ब को अपना प्रियतम समझ उसे पाने के लिये जल बिलोरती, परंतु फिर थक जाती, रूक जाती। नन्हीं–सी जान का क्रन्दन भी नन्हा, पर हृदयस्पर्शी और गहरा था।

साँझ पड़ी दिन आ थमा, दीनी चकवी रोय।
चलो चकवा वहाँ चलेंगे, जहँ दिवस–रैन न होय।।
साँझ की बिछुड़ी चाकवी, आन मिले प्रभात ।
चेतन से बिछुड़ा चेतनवा, दिवस मिले न रात।।

चकवी के आर्तनाद को पवनंजय ने सुना, उस ओर देखा, जहाँ वह कराह रही थी और फिर व्यथा से व्याकुल हो वे तड़प उठे। सोचा, वे क्या कर सकते हैं उसके लिए? क्या देकर उसे धीरज बँधा सकते हैं। कमल का स्निग्ध स्पर्श भी उसे असह्य हो रहा है।

परिताप से सन्तप्त पवनंजय के अपराधी हृदय को सब स्मरण हो आया और उनकी आँखों से, पूर्व घटनाओं के स्मरण से झर–झर आँसू बहने लगे, मानो पिघलता हुआ लौहा हो।

अहो! मेरे अहं की जरा–सी फाँस से घोर अनर्थ हो गया और मेरा मन

कोमल अंजना के मन के समर्पण को भी न समझ सका।

कषायों की तीव्रता अपराध कराती है, कषायों की मंदता पश्चात्ताप कराती है।

स्वयं की ही वर्तमान कमजोरी से हुए अहंकार एवं विषयासक्ति रूप विकल्पों को धिक्कार है, जिसमें धर्म, धर्मायतन और धर्मी जीवों की उपेक्षा होती रहे। दुनिया क्या सोचेगी, क्या समझेगी– ऐसी मिथ्या लोक–लाज से क्या? हमें तो अब इसी क्षण अंजना का साक्षात्कार चाहिए। फिर मित्र प्रहस्त के साथ पवन कुमार अंजना के प्रासाद की ओर चल पड़े।

वासना की आग में जलते हुए अज्ञान को।
धर्म ही होगा शरण इस लोक में इंसान को।।
धर्म धर्मी धर्मायतन बिन घोर दुख लहरायेगा।
आत्मार्थी सत्संग में संसार से तिर जायेगा।।

रत्नकूट प्रासाद की चाँदनी छत पर यान उतरा। पवनंजय उतरकर देखते हैं, नया ही है यह क्षेत्र।

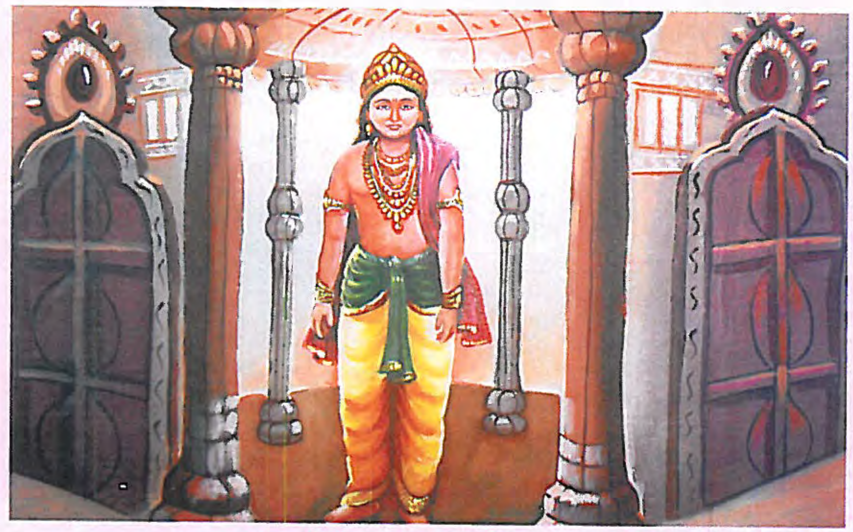

कुमार पवन, जिनकी देह पर युद्ध की सज्जा नहीं है। द्वार की देहली पर आकर वे ठहर गये, फिर सहज माथा झुकाकर भीतर प्रवेश किया। कक्ष में कुछ दूर जाकर वे फिर ठहर गये, आगे बढ़ने का साहस नहीं हुआ। सामने

दृष्टि पड़ी अंजना को देखते ही सिर से पैर तक काँप गये, क्योंकि अपना ही भार को सँभालने का बल उनके पैरों में नहीं रह गया था। मानो घुटने टूट गये, कमर टूट गई, कमर का अंग–अंग पत्तों–सा थरथरा रहा है। अभी–अभी भागकर लौट जाना चाहते हैं, पर पैर न भाग पाते हैं, न खड़े रह पाते हैं और न आगे ही बढ़ पाते हैं।

कुमार पवन नीची दृष्टि किये देख रहे हैं कि नहीं है यहाँ विलास का कक्ष, सामने पाषाण का तखत रखा है और उस पर बिछी है शीतल पाटी, सिरहाने की जगह कोई उपधान नहीं, तब शायद सोने वाली का हाथ ही है उसका सिरहाना। सारा वैभव सिमटकर दीवारों के सहारे परित्यक्त पड़ा है। सारे मणि दीप पड़े हैं निरर्थक और अनावश्यक।

जाने कब अंजना ने आकर उन काँपते पैरों को अपनी भुजाओं में थाम लिया।

पवनंजय ने चौंककर अपने पैरों की ओर देखकर रूँधे कंठ से बोले– जन्म–जन्म के अपराधी को और अपराधी न बनाओ उसके अपराध से मुक्ति दो, गला रूँध गया। कुछ देर ठहरकर बोले– ऐसा अपराधी यदि हिम्मत करके शरण आ गया है तो क्या उस पर दया न करोगी।

सुबह का भूला हुआ, घर लौट आया शाम को।
माफ कर दो अंजना, मेरी खता अभिमान को।।
जाने अनजाने में भूलें, हमसे जो भी हो गई !
तुम क्षमा की मूर्ति हो, कर दो क्षमा नादान को ।
धर्मी धर्मात्माओं का सपने में न हो अनादर।
मोम सा पिघले हृदय जिनधर्म मेरी जान हो।।

बह जाने दो जन्मों–जन्मों के संचित दुर्भिमान की इस कलुषता को, कहते–कहते पवनंजय फूट–फूट कर रो पड़े।

जिस प्रकार अनादिकाल से जीव की पर्याय ने स्वभाव से बिछुड़कर घोर दुख पाया, फिर अंतर्मुखी पुरूषार्थ द्वारा निज घर में आते ही अद्भुत सुख–शांति का अनुभव किया, उसी प्रकार अंजना एवं पवन की मनोदशा चल रही है, उसका वर्णन शब्दों में संभव नहीं।

सदा से क्षमा करती आई हो और अभी–अभी जघन्यतम अपराधी को शरण दी है, फिर भी उस साक्षात् क्षमामूर्ति के सन्मुख खड़ा हो क्षमा माँगने की धृष्टता कर रहा हूँ, तुम्हें नहीं जान पा रहा हूँ, मैं फिर चूक रहा हूँ– ऐसी ही चूक एक बार पहले हुई थी।

बाईस वर्ष पूर्व मानसरोवर के तट पर सब कुछ ठीक ऐसा ही तो था। ठीक ऐसी ही तुम्हारी आँखें थीं, जिनमें कितनी करूणा, कोमलता, वात्सल्य और विनम्रता बसी हुई थी: लेकिन उस दिन मुझसे महती भूल हो गई, मैं तुम्हारा सही स्वरूप न पहचान पाया। मुझ पर गहन अंतराय का आवरण चढ़ा हुआ था। अपने एक अहं की फाँस के विकल्प के पक्ष ने तुम्हें पहचानने नहीं दिया।

पर आज भी क्या तुम्हें पहचान पा रहा हूँ, पाकर भी बार–बार चूक जाता हूँ। एक बार तो पूछो अंजना कि इस पाषाण हृदय ने मोम–सी कोमल अंजना को आखिर ऐसी सजा क्यों दी?

अब क्या मैं इस लायक भी नहीं बचा कि अपने हुए दोषों का पश्चात्ताप कर सकूँ – सुनकर अंजना गंभीर हो गई।

अंजना कहने लगी– मैंने पूर्व भव में तीन लोक के निर्दोष परमात्मा में दोष देखा था, उसका फल तो अभी भुगतना पड़ा। अब तो मेरी केवल एक ही भावना है कि अपने निर्दोष परमात्मा को स्वीकार करके किसी के दोष देखने की शक्ति ही न रहे, अपने दोष सुनने के लिए साहसी बनूँ और दोषों को निकालने के लिए पुरूषार्थी रहूँ।

अरे, अपना समर्पण ही जब शत्रु बन बैठा, अपने ही सुख में जब इतनी निमग्न हो गई थी। कि मेरे सन्मुख होने वाली तुम्हारी उस उपेक्षा और अपमान का मुझे भान तक नहीं हुआ। घटनाएँ तो निमित्त मात्र होती हैं। मेरे ही कर्मों के दोष का आवरण था, जो न जाने किस भव से मुझ पर पड़ा था।

पवनंजय – क्या मेरा मात्र एक विकल्प ही निर्दोष, शांत, सौम्य, धर्मी अंजना तक पहुँचने में अंतराय बनता रहा ?

अंजना – हाँ आर्य! भगवंतों की आज्ञा के विरूद्ध उठने वाले मात्र एक ही विकल्प के पक्ष एवं लक्ष्य ही ने तो निर्विकल्प तत्त्व तक पहुँचने से अपने को रोके रखा है।

पवनंजय की आँखों का जल सूख नहीं पा रहा है।

अंजना कहती है– क्या यह कम है कि हम इसी भव में पुन: मिल गए? इतने कठोर परिणामों के बीच भी श्री वीतरागी देव, निर्ग्रंथ दिगंबर संत एवं उनकी वाणी हमें पुन: मिल जाती है, क्या यह हमारा महासौभाग्य नहीं है।

पवनंजय – लेकिन अंजना ! रागादि की मंदता के काल में भी महान सौभाग्य से मिले देव–शास्त्र–गुरू एवं साधर्मीजनों का संग भी जानने का अहं, रूचि की विपरीतता, उपयोग की स्थूलता और अपने सर्वस्व समर्पण के बिना निकटता नहीं होने देता।

ऐसा सौभाग्य भी वर्तमान के प्रमाद से, अज्ञान के पक्ष से, विषयासक्ति एवं दुभार्वों से दुर्भाग्य में बदल जाता है।

फिर भी ज्ञानी गुरूओं की पवित्र दृष्टि में हमारी पवित्रता सदा अखंडित रहती है एवं उनकी पवित्र दृष्टि की अनुकंपा ही हमें स्वयं की दृष्टि में पवित्र स्वीकार कराने में सहायक होती है। यही तो धर्मानुरागी करूणाधारी गुरूओं के अनुग्रह एवं वात्सल्य का फल है। अब तो बस एक ही भावना है कि पवित्र दृष्टि के बल पर राग–द्वेष ही न हो एवं अस्थिरता से हों तो वे राग–द्वेष अपने दिखें ही नहीं।

क्षण भर की भी सद्गुरू संगति, कितनी समता देती है।
सर्व समस्या समाधान हों, अद्भुत शांति झरती है।।
समता का सागर पल–पल में, जिनके सदा उछलता है।
सबका हो कल्याण जगत में आशीष जिनका रहता है।।
शुद्ध आत्मा अनुभव करते, सबको सदा कराते हैं।
जे गुरू चरण जहाँ रखते हैं, तीर्थ वहीं बन जाते हैं।।

चौथे प्रहर का मंगल वाद्य राजद्वार पर बज उठा,गहरी नींद में पवनंजय सो रहे हैं। अंजना अपना कर्तव्य समझती है।

इस क्षण कुमार को रोकना नहीं है, लौटाना ही होगा।

पवनंजय की नींद खुल गई।

अंजना – एक निवेदन करना चाहती हूँ....।

पवनंजय – हाँ–हाँ.... कहो!

अंजना – हे आर्य पुरूष! अनीति और अन्याय के पक्ष में, मद और मान के पक्ष में तुम्हारा शस्त्र नहीं उठेगा। जीव मात्र के स्वाभिमान की रक्षा विजय के गौरव और राजसिंहासन से भी बड़ी चीज है।

कुमार पवन ने अंजना के मुख से निकले इन शब्दों को पथ का पाथेय समझकर हृदय में सँजो लिया।

अंजना – दुनिया की आँखों में तुम कब आये और कब चले गये, यह कोई नहीं जानता, तब पीछे कुछ हुआ तो ? तत्काल कुमार ने भुजा पर से वलय और अँगुली पर से एक मुद्रिका निकालकर अंजना के हाथों में देते हुए कहा – तुरंत ही लौटूँगा।

फिर भी अपने विश्वास के लिए चाहो तो यह रख लो। सहज निरपेक्ष ज्ञातास्वभाव की धारी अंजना गंभीरता से बोली –

निश्चिंत होकर जाओ, मन में कोई खटका मत रखना।

आँसू भीतर झर गये, होंठों पर मंगल मुस्कुराहट थी।।

{4}

निर्दोष दृष्टि के बल पर निर्दोष तत्त्व की स्वीकृति करके निरपेक्ष ज्ञाता रहने वाली अंजना कुमार पवन की प्रतीक्षा कर रही हैं। दिन बीत रहे हैं। प्रतीक्षा की वेदना दिन–प्रतिदिन गहरी हो रही है। कोई निश्चित समाचार नहीं, मात्र अनिश्चित खबरें आती हैं। अंजना के शरीर में गर्भवती होने के चिह्न प्रकट होने लगे। अंजना अकेली बैठी चिंता में डूबी उदास हो जाती है। वसंत अपनी सखी का दुख मन ही मन पी लेती है। आँसू अंदर ही अंदर झरते रहते हैं।

अंजना वसंत से बोली – तुम चुप रहती हो जीजी! क्या मैं नहीं समझ रही हूँ, देवदर्शन के लिए भी डर–डर कर जाना पड़ता है? क्या मैं इतनी हीन समझूँ अपने आपको ?

यदि अंधी लोक दृष्टि में ठीक–ठीक पारस्परिक जानने–समझने की शक्ति होती तो संघर्ष–दुख होते ही नहीं। सर्वत्र दुनिया मंगलमय होती। पवित्रता, समर्पण, विश्वास, आत्मा – इन सबका कोई रूप–रंग तो है नहीं, जो हम प्रकट करके दिखा दें – कहते–कहते अंजना की आँखें भर आईं।

जहाँ लौकिक जीवों का अभिप्राय स्वयं को सबसे अच्छा एवं ऊँचा करके देखने का होता है, वहाँ वे औरों को निर्दोष, पवित्र कैसे मान सकते हैं?

सास केतुमती सहित अन्य लौकिक जनों को यह जानने की जिज्ञासा नहीं थी कि पवनंजय कब आये और कब चले गये। वे सब तो अंजना को अनादर और उपेक्षा भाव से देखने लगे और अपनी ही कल्पना मात्र से इतना समझने लगे कि निश्चित ही अंजना ने कुछ गलत किया होगा।

बात कानोंकान सारे राजपरिवार में फैल गई। महादेवी केतुमती ने सारा वृत्तांत महाराज से कहा। रानी ने अनेकों विलाप–प्रलापों के बाद महाराज प्रह्लाद से अनुमति ले ली कि अंजना को महल से निकालकर उसके पिता के घर महेन्द्रपुर भेज दिया जाये।

राजा के कानों में भी गूँज रहे थे प्रजाजनों के आरोप प्रत्यारोप आक्षेप इसलिये वो सत्य को जानना ही नहीं चाहते थे।

अगले दिन, अपने दैनिक कार्यों से निवृत्त हो, जिनेन्द्र भगवान के गुणों के अनुराग में पगी अंजना स्वयं की दुर्बलता से उत्पन्न हुई कलुषता को मिटाने के लिए देव–शास्त्र–गुरू के उपकार से उपकृत चित्त में उनकी सौम्य मुद्रा एवं दिव्यवाणी का विचार, चिंतन–मनन कर रही थी।

अहो! स्वभाव की महिमा इतनी अपूर्व है कि तीन लोक की प्रतिकूलताएँ एक साथ भी उदय में आ जायें तो भी उसका सामना करने की सामर्थ्य आत्मा में है।

अचानक उसी समय सिंहनी–जैसी दहाड़ती महादेवी केतुमती का आगमन हुआ। कोमल हृदया अंजना एवं वसंत दोनों ही थर–थर काँपने लगीं। जगत के कुटिल जनों से धर्मी जीव हमेशा भयभीत रहते हैं। अत: बिना अपराध किये ही उनका नम्र हृदय अत्यंत विनम्र होकर क्षमाभाव अर्पित करने लगा और दोनों उनके चरणों में दंडवत् हो गईं। महादेवी केतुमती ने पूरी शक्ति से पदाघात करके धक्का दे मारा। क्षण–भर को तो अंजना स्तब्ध रह गई कि आखिर बात क्या है!

महादेवी केतुमती का निष्ठुर हृदय सत्य जानने की इच्छा लेकर ही नहीं आया था।

अज्ञानियों के विपरीत अभिप्राय में भगवंतों के ज्ञान तक का निषेध

वर्तता है तो फिर सामान्य जीवों की बात को आदरपूर्वक कैसे सुनते। वसंत द्वारा प्रस्तुत की गई वलय–मुद्रिका को पहचानने से भी दृढ़ता पूर्वक मना कर दिया और कहा कि पूर्वजों की पुण्यभूमि को नरक बनाने वाली तुम दोनों मुँह दिखाने लायक नहीं हो। सारथी को आज्ञा दी कि जाओ, मेरे क्रोध की सीमा बढ़े, उससे पहले तुम इन्हें नगर की सीमा से बाहर ले जाओ।

अंजना विचारने लगी – प्रतिकूल प्रसंग को यदि समतापूर्वक वेदन किया जाये तो जीव को निर्वाण की समीपता का साधन है, व्यावहारिक प्रसंग तो नित्य चित्र–विचित्र होते ही रहते हैं। मात्र कल्पना से उसमें सुख एवं दुख, ऐसी मात्र भ्रांति है। अनुकूल कल्पना से वे अनुकूल प्रतीत होते हैं, प्रतिकूल कल्पना से प्रतिकूल प्रतीत होते हैं। ज्ञाता स्वभाव के अनुकूल रहने वालों को सारे व्यावहारिक प्रसंग न अनुकूल हैं, न प्रतिकूल।

इतनी शक्ति हमें देना भगवन्, आत्मविश्वास कमजोर हो ना।
अपनी समता निधि में सम्हारूँ, दोष जग में किसी को भी दूँ ना।।
चाहे प्रतिकूल कोई प्रसंग हो, होवे अनुकूल सारा ये संसार।
मुझको भासे न कुछ लाभ हानि, मेरे हृदय में होवे समयसार ।
धैर्य ऐसा हो भगवन जीवन में, भावना मन में बदले की हो ना।।
हम न सोचें किसी ने किया क्या? हम ये जानें सभी ज्ञान के ज्ञेय।

कर्मों की निर्जरा ही तो होती, जो भी होता होने योग्य ही रे।।
फूल समता के बाँटे सभी को, सबका जीवन ही हो जाये मधुवन।।

{ 5 }

रथ अंतः पुर के गुप्त–मार्ग से बाहर निकल गया।

रथ महेन्द्रपुर के मार्ग पर चला जा रहा है। शीतल पवन के स्पर्श से सचेत होकर मूर्च्छित अंजना ने वसंत की गोद में आँखें खोलीं।

अंजना बोली – मुझ अभागिन के कारण तुम्हें बार–बार अपमान और कष्ट सहने पड़ रहे हैं। आज तो इन सबकी पराकाष्ठा हो गई। सोचती हूं, यदि मेरी राह में काँटे ही काँटे हैं तो तुम्हें उनके बीच क्यों घसीटूँ? प्रतीत होता है, अभी तक दुर्दिनों का अंत नहीं हुआ है, कर्मों का नाटक देखना अभी और बाकी है। इसलिए मुझे अपनी यात्रा अकेले ही करनी चाहिए।

तुम्हें अपने घर लौट जाना चाहिए। मेरे साथ तुम्हारा प्रेम और शुभेच्छायें हैं ही।

वसंत – मुझे क्या पत्थर की मूरत समझ रही हो अंजना ! जानती हूँ कि तुम्हारे जैसी सहनशीलता मुझमें नहीं है, पर तुम्हारी सहचरी बनने का भरसक प्रयास करूँगी। तुम्हारी कृपाकांक्षी बनने में स्वयं को गौरवान्वित एवं

सौभाग्यशाली समझूँगी।

अंजना – मैं अकिंचन आपके उपकारों के बोझ से दबी जा रही हूँ। न जाने कितने जन्म लेने होंगे उससे मुक्त होने के लिए। मुझ अनाथ के पास है क्या, जो तुम्हें दे सकूँ, सिवाय दुख और कष्टों के इसलिए सोचती हूं कि ज्ञान में सुख का विश्वास बढ़ाते हुए उसकी महिमा एवं अपनेपन के बल से अपने कर्मों की निर्जरा करूँ।

वसंत सोचने लगी – कैसी निष्पृह है ये, जिसे बाहर की दुनिया के किसी भी आधार की जरूरत ही नहीं है! वास्तव में जिन्होंने अपने आत्मा को आधार बनाया, वह सारे जगत के लिए आधारभूत हो जाते है। इनके लिए मात्र अंतर्जगत का रास्ता ही परम सत्य है। हर परिस्थिति का डटकर मुकाबला करने को यह तैयार है। किसी के प्रति कोई शिकायत, कोई अपेक्षा इनके जीवन में शेष है ही नहीं। मात्र निःस्पृहता एवं निरपेक्षता में ही इनके दर्शन होते है।

वसंत कहने लगी – महादेवी केतुमती की निर्दयता देखकर जगत के प्रति क्या इतनी उदासीन हो जाओगी बहिन? कि अब आप अपने माता-पिता का भी विश्वास न कर सकोगी?

क्या महेन्द्रपुर के स्वामी भी हमें अपने यहाँ से जाने देंगे? वे तो अपनी बेटी को देखते ही स्नेह से भर उठेंगे।

अंजना – यह जीव जहाँ जन्मा है, जो देह धारण की है वहाँ–वहाँ अभिमान से मेरापना मानकर अनादिकाल से भटका है। अहो इस जीव को अनंत दुख होने पर भी, नरक–निगोद के अनंत दुख सहने पर भी जागता क्यों नहीं है? वैराग्य के प्रति पग रखकर कहाँ चला जाता है। क्या अभी इस जीव को दुखमय संसार अच्छा लगता है।

दोष सास–ससुर किसी का भी नहीं है। दोष तो बस इतना है कि अपने स्वरूप को चूककर लक्ष्य संयोग पर जाता है और अपने में हुए राग-द्वेष का पक्ष रहता है। वही पक्ष वर्तमान आकुलता एवं भविष्य की दुर्गति का कारण है। अब तो बस एक ही भावना है कि स्वरूप को चूककर अपने पर्यायगत भावों का लक्ष्य ही न हो पाये।

जन्मभूमि के प्रति मेरी दूर से ही शत शत वंदना।

वसंत – विपत्ति के समय ही तो आत्मीय जनों की परीक्षा होती है बहिन ! क्या किसी का विश्वास एवं प्रीति शेष नहीं रही ?

अंजना – कर्मावरण तो सब जगह एक से ही पड़े हैं न जीजी ! लोग विश्वास न भी कर सकें तो कोई आश्चर्य नहीं। इसमें उनका क्या दोष?

वसंत – तुम्हारी समझ के सामने मैं नतमस्तक हूं, पर मेरी बात तो तुम्हें माननी ही होगी। महाराज के सामने मैं सत्य प्रकट करूँगी। देखना है, वे क्या कहते हैं। इसके बाद ही तुम्हारा निर्णय मुझे स्वीकार्य होगा।

नगर की सीमा के निकट रथ रूका, यहाँ उतरने की बात अंजना की कल्पना में नहीं है।

सारथी का कर्तव्य वह जानती है। दोनों रथ से उतरीं। शरीर थर–थर काँप रहा है, मानो अभी गिर पडेंगी।

सारथी रथ से उतरकर विदा माँगने आया । मूक पशुवत् वह अंजना को देख रहा है। आँखों से अश्रुधारा बह रही है। दूर, सामने भूमि पर सिर रख कर सारथी ने बारंबार प्रणाम किया और अपने कठोर कर्तव्य की क्षमा–याचना के लिए शब्दों को ढूँढने लगा, पर शब्द नहीं मिले। ग्लानि और विषाद से होंठ खुले रह गये और आँखें पथरा गईं। आँसुओं में उसकी मूक बेबसी झलक रही थी।

अंजना भी बड़ी कठिनाई से स्वयं को सँभाल पा रही थी, पर सारथी की उस सहज मानवीय संवदेना को देखकर वह अपना दुख भूल गई और चरणनत सारथी के सिर पर हाथ रखकर बोली– भैया! दोष तुम्हारा नहीं है। तुमने अपने कर्तव्य का पालन किया है। जाओ, प्रभु तुम्हारे साथ है।

{ 6 }

अंजना की आँखों में आँसू उमड़ते ही चले आ रहे हैं। उन्हें इस रूप में जन्मभूमि में वापस आना पड़ेगा, इसकी उन्होंने कल्पना भी नहीं की थी। बाईस वर्षों बाद लौटी है वह अपनी जन्मभूमि पर, पिता के द्वार पर। शरणार्थी बनकर, कलंकिनी होकर।

क्या वे इन्हें आश्रय देंगे? क्या जन्मभूमि आश्रय देगी? ऐसे प्रश्नों को उन्होंने निःस्पृह होकर दबा दिया।

रथ से उतरकर, नगर सीमा से बाहर, नदी के किनारे वृक्ष तले अंजना बैठी है। वसंत जल भर लाई। भोजन का प्रश्न गौण बनकर रह गया, हाथ–मुँह धोकर जल पिया।

वसंत ने अंजना से कहा– बहिन ! मैं जा रही हूँ। प्रभु से विनती करना कि वह हम सब को विवेक दें और मैं सफल होकर लौटूँ।

अंजना – प्रभु तुम्हारे साथ हैं, हम सबके साथ हैं। कहाँ नहीं हैं वह! हम ही तो उनको पहचानने से चूक रहे हैं। ......

वसंत – कहते–कहते चुप क्यों हो गई बहिन?

आकाश की ओर देखते हुए अंजना बोली – कुछ नहीं जीजी! बस, यही कह रही थी कि तुम अंजना बनकर पिता के घर जा रही हो, रोते हुए याचक बनकर, भिखारी बनकर मत जाना। जो भी मिले, पथ का पाथेय समझ अपने पास रख लेना। अधीर मत हो जाना। इतना ही कहना कि कलंकिनी अंजना ससुर–गृह से निकाल दी गई है। क्या पितृ–चरणों में उसको आश्रय मिलेगा?

अपना सती–आचरण सिद्ध करने के लिए उस रात की कथा कहने से क्या कुमार का अपमान नहीं लगता? उन्हें मेरा होने के लिए क्या किसी की साक्षी चाहिए? क्या इतने असमर्थ हैं वे कि उन्हें मुझे अपनाने के लिए अपने प्रमाण देने पड़ेंगे? वे तो स्वयं एक दिन अपने को प्रकट करेंगे ही।

चाहो तो भले ही इतना कह देना कि जगत जो जानता है, वह अंतिम सत्य नहीं है। दया और भीख की जरूरत कलंकिनी अंजना को शायद हो, लेकिन पूर्णता का आश्रय लेने वाली अंजना को आश्रय की जरूरत नहीं।

जगत माने या न माने, मेरा अंतिम यही निर्णय ।
कोई जाने या न जाने, मेरी श्रद्धा अटल निर्भय।।
दया की भीख न माँगूँ, उदय जो आये देखूँगी।
जिनेश्वर देव भक्ति से, मैं जग के खेल निरखूंगी।।

वसंत – भगवान देख रहे हैं। बहिन ! तुम्हारी भावनाओं को दिखाने का मैं भरसक प्रयत्न करूँगी। कहते हुये वसंत चली गई ।

{ 7 }

अंजना सामायिक करने बैठ गई।

अंजना विचारमग्न है–

वस्तु के परिणमन में राग की अपेक्षा नहीं है। हमारे कलुषित परिणाम हमारी ही आकुलता के कारण हैं। फिर जो भी इस परिस्थिति में निमित्त बने, फिर चाहे वे सास–ससुर हों, पति हों अथवा माता–पिता ही क्यों न हों, पर वे सब मेरे कर्मों के वश होकर ही तो ऐसा कर रहे हैं। अपने ज्ञाता–स्वभाव का पक्ष एवं महिमा नहीं होने से ही, अपने में होने वाले परिणाम और उनके निमित्त पर भार आता है और संसार चक्र चलता रहता है।

अपने दुखों का दायित्व औरों पर न डालूँ। अज्ञान और असंमय से होने वाले पापों का अंत नहीं है। कितने ही जन्म अज्ञान, प्रमाद, विषयासक्ति एवं भौतिक चकाचौंध में लक्ष्यहीन भटकते हुए बीत गये।

अहा..... अपने स्वरूप का लक्ष्य होने पर, जो ज्ञानधारा की वृद्धि हुई, उस स्वरूप का ध्यान होने पर, उसमें एकाग्रता होने पर, उस स्वरूप का वेग तीव्रता से आया और उपयोग पर–लक्ष्य से हट गया। अपने स्वरूप में स्थिरता हुई, ऐसे आत्मद्रव्य की महिमा कोई अपार है। संसार दुखमय है, इसलिए आत्मा का पुरूषार्थ कर संसार से तिरने की आवश्यकता है। प्रमाद करना योग्य नहीं।

हे प्रभो ! मुझे बल दो । मैं अपने में और सब जीवों में प्रभुत्व देख सकूँ।

बाईस वर्षो में सभी कुछ बदल चुका है। वसंत कठिनाई और युक्तियों से जैसे–जैसे काँपते पैरों से महाराज के सामने प्रकट हुई।

वसंतमाला महाराज के चरणों में वंदन करती है। नाम सुनकर महाराज विस्मित रह गये।

महाराज – असमय और बिना सूचना के तुम यहाँ आई कैसे?

वसंत – अपराध क्षमा हो महाराज!

वसंतमाला एकांत में प्रजापालक से कुछ निवेदन करना चाहती है।

महाराज का संकेत पाकर एकांत हो गया।

वसंत पास जाकर चरणों में बैठ गई। बार–बार साहस बाँधकर, क्षमाभाव से विनम्र होकर उसने अपना निवेदन प्रारंभ किया।

मानो कि अंजना ही आँचल पसारकर आपके सम्मुख आई है। चाहो तो अपने पैरों तले उसे कुचल दो अथवा स्वार्थी दुनिया में ठोकरें खाने के लिए छोड़ दो महाराज !

अत्यंत निष्कपट भाव से संयम के साथ अंजना का आत्मनिवेदन वसंत ने महाराज के सामने प्रकट किया।

महाराज ने सुना तो उन्हें ऐसा लगा मानो सारा आकाश फट पड़ा हो, धरती फट गई हो। दोनों हथेलियों को कानों पर रखकर विह्वल होकर बोले– हाय हाय ! क्या यही सुनने के लिए मैं अब तक जीवित था?

उत्तेजित हो मानो रूदन करते हुए बोले – ओह ! तूने दोनों कुलों को डुबो दिया। सौ पुत्रों के बीच एक प्राण–पालिता पुत्री अंजना, और उसी ने यह क्या किया ? दूर हट निर्लज्ज! इन आँखों के सामने से दूर हो जा ! यदि मेरी पुत्री हो तो उससे कहना कि अपना कलंकित मुँह दुनिया में दिखाती न फिरे, कहीं जाकर डूब मरे।

फिर बोले – अंजना को आश्रय देना तो दूर, यदि किसी ने उसका नाम भी लिया तो उसका एक ही दंड होगा– मृत्युदंड।

वसंत गाज गिरी–सी रह गई। किसी सगे पिता का ऐसा स्वरूप उसने आज पहली बार देखा था। विश्वास उठ गया। महाराज का रौद्र रूप देखकर किसी निवेदन, स्पष्टीकरण का स्थान ही नहीं बचा। वसंत चुपचाप लौट गई।

{ 8 }

अंजना लेटी हुई है।

वसंत अंजना के पास आकर बैठ गई।

अंजना के मुँह से धीमे से वेदना का स्वर निकला।

वसंत – अंजना ! नींद आ रही है।

अंजना – ओ हो जीजी! कब आईं? मैं तो जाग ही रही थी, मुझे सचेत कर लेतीं।

वसंत – कष्ट हो रहा है, अंजना?

अंजना – कुछ नहीं यों ही।

वसंत – महादेवीजी ने पूरी शक्ति से पदाघात जो किया था।

अंजना – अब याद न करो जीजी! वह सब बिसार दो।

अज्ञानी की भूल हो तो उसे जान लेना, परंतु उसका तिरस्कार नहीं करना। वह भी भगवान आत्मा है, वे बेचारे अज्ञान से दुखी हैं जो दुख में झूल रहे हैं, उनका तिरस्कार करना अपना कार्य नहीं हैं।

अपनी अभागिनी अंजना का भाग्य परख आई जीजी? चुप क्यों हो, बोलो तो कुछ ?

वसंत – होकर आ गई बहिना! नहीं मानी न तेरी बात?

वास्तव में संसार में कोई किसी का नहीं है। मात्र भ्रांति से कल्पना है। जगत में सब जीव ज्ञानपिंड आत्मा हैं। वह पुत्री या माता कहाँ से हो। जीव व्यर्थ में खोटा राग–द्वेष करके मेरापना मानकर संसार में भटका हैं। यह संसार एकांत दुख में जल रहा है। इसमें सत्य–सुख का मार्ग खोजना ही आत्मा को कल्याणकारी है।

झूठा है संसार, झूठी है उसकी माया–ममता, झूठे हैं माता–पिता–पुत्र–पति–कुटुंब सब स्वार्थ के साथी हैं। संसार में भरमाने वाले और अपने से लगने वाले परिवार जन ही अपने को भुलाने में निमित हैं। अंजना– कोई भारी प्रतिकूलता आ पड़े कोई बड़े कठोर मर्म च्छेदक वचन कहे तो शीघ्र ही शरीर में स्थित परमानंद स्वरूप परमात्मा का ध्यान करके शरीर का लक्ष्य छोड़ देना समता भाव रखना।

बसंत – अब कहाँ जाना होगा।

अंजना – जहाँ निर्ग्रंथ दिगंबर संतों की तपःस्थली हो, किसी को कोई रोक–टोक न हो, किसी के छिद्र देखने का किसी को अवकाश न हो, वहाँ अपना निवास बनायेंगे।

वसंत – क्या हम नारी देह में सुरक्षित रहकर आगे आने वाले कष्टों का सामना कर सकेंगे?

अंजना – यही तो नारी पर्याय के संस्कारों की दुर्बलता है। रक्षकों के बीच में से ही हम परित्यक्त, अपमानित, उपेक्षित, तिरस्कृत और कलंकित करके बाहर निकाले गये हैं। क्या अब भी हमें उन्हीं के बीच में शरण ढूँढनी बाकी है?

शील एवं सम्यक्त्व की रक्षा स्वयं के लिए करनी है। पतिव्रता सिद्ध होने के लिए नहीं। इन प्राणों का लोभ अब हम बहुत पीछे छोड़ आये हैं। बहिन! किसी भी कीमत पर तीव्र रागी, असंयमी, तत्त्वज्ञान की अवमानना करने वाले जीवों का संग अब हमें नहीं चाहिए।

वसंत – पर हम दोनों के अलावा जो तीसरा जीव है, उसकी रक्षा के बारे में कुछ विचार किया बहिन!

अंजना – सर्व द्रव्य स्वतंत्र परिणमते हैं, कोई किसी का स्वामी नहीं। जीवों ने पर का स्वामीपना माना है। वही उसका अज्ञान है, वही उसके दुख का मूल कारण है।

हर जीव अपने कर्मों का नियोग साथ लेकर ही आता है। अपना विधान वह अपने साथ लाया है। वह स्वयं अपनी रक्षा करने में समर्थ है। किसी को मारने या बचाने से वह मरेगा या बचेगा नहीं। उस जीव की चैतन्य सत्ता का अनादर मैं कैसे करूँ?

सूर्योदय से पहले इस नगर की सीमा को छोड़ना होगा।

वसंत ने समझ लिया कि इस धर्म–आराधिका से पार नहीं पाया जा सकता है। इसकी निर्भयता हिलने वाली नहीं है। तीनों लोक यदि हिलते हों तो हिल जायें, किंतु इस जीव को हिलाने वाला तीनों लोक में कोई नहीं हो सकता है।

धन्य है ऐसे धर्मी जीवों का क्षण भर का भी संग, जो स्वयं के अस्तित्व का विश्वास करा दे और सब भयों का नाश करा दे।

देखो, कर्मोदय की विचित्रता! रत्नों के महलों में रहने वाली अंजना रत्नों के ताज से जो कभी सुशोभित थी, आज शरीर पर रत्न का तार भी नहीं है।

राह अनिश्चित है, गंतव्य असूझ। पर चरण दृढ़ विश्वास के साथ प्रतिपल आगे की ओर अकंपित बढ़ रहे हैं।

अंजना को थामे, कुछ पीछे वसंत चल रही है, पर अंजना के दुखों को थामने की शक्ति उसमें नहीं है। आँसू भीतर ही भीतर झर जाते हैं। कौन है जो अंजना के दुखों की थाह ले सके और खोज सके कि उसके आँसू कहाँ अटके हुए हैं!

प्रभात हुआ। सूर्य की ऊष्मा पृथ्वी को चूमने चली आ रही है। धीरे–धीरे धुँधलापन दूर हुआ।

और दिशाएँ उजली हुईं। वसंत अंजना का चेहरा सहानुभूति से देखना चाहती थी, परंतु उसका मुख देखकर वह विस्मित और प्रमुदित हो गई। मौन तपस्वी की भाँति उसके चेहरे से धैर्य और साम्यभाव छलक रहा था। न अपनापन न परायापन। निर्लिप्त, प्रशांत, अपेक्षा और उपेक्षा से परे, नये दिगंत की ओर उन्मुख। मन में नये प्रभात की नई आशाओं की किरणों को लिये दूर गगन की छाँव में पहुँचने के लिए बस – चलते रहो, चलते ही रहो, ताकि जगत की कौतुक भरी दृष्टि और दुखदायी प्रश्नों से दूर जाया जा सके। न दया का पात्र बनना है और न सहानुभूति पानी है, इसलिए इस जगत और जगतवासियों के प्रति अंजना ने अत्यंत निःस्पृह भाव धारण कर लिया।

अंजना विचारों में तल्लीन है–

चाहे जैसे प्रसंगों में शांति ही श्रेयस्कर है। दूसरा कोई उपाय नहीं है। आकुलता उल्टा नुकसान का कारण होगी। यह तो अपने ही पूर्व के परिणाम का फल है, ऐसा जानकर शांति रखकर आत्मरूचि बढ़ाना, वह अपने हाथ की बात है। उसको बाहर के संयोग रोक सकें, ऐसा नहीं। सही रूचि का बीज कहा जायेगा, इसलिए जैसे बने, वैसे आत्मरूचि बढ़ाना। चाहे जैसे संयोगों मे शांति और धैर्य रखना लाभ का कारण है।

अनुकूल–प्रतिकूल संयोग बनना वह तो संसार की स्थिति ही है, उसको फेरने में आत्मा की सामर्थ्य नहीं। पर इस संसार–समुद्र में से आत्मा को तिराना, ऊँचा लाना वह अपनी स्वतंत्रता की बात है।

सगे– स्नेही जीवों का मिलना–बिछुड़ना वह तो जड़–चेतन के संबंध को लेकर हुआ ही करता हैं। परंतु अनादि परिभ्रमण रूप संसार में हजारों सगे–स्नेही जीवों का वियोग हुआ है, हजारों का राग कुदरत ने भुलाया है पीछे जीव जहाँ जन्मता है, वहीं अपनापन मान लेता है, परंतु वे सगे–स्नेही भी छूट जाते हैं। फिर पीछे दूसरे सगे–स्नेही बनाता है। ऐसी घटमाल में यह संसार चक्र चलता ही रहता है।

हृदय में ज्यादा खेद रखना नुकसान का कारण है। इस महँगे जीवन में आत्महित कैसे हो? यही विचारने जैसा है। आयु स्थिति क्षणभंगुर है। यदि जीवन में आत्मा के प्रति कुछ किया हो तो अंतिम समय में वही शरणभूत है सुख दूसरे पदार्थों में नहीं, आत्मा में है। जहाँ सुख नहीं है, वहाँ सुख मानना वही दुख का कारण है।

अरे! अपना सुख अपने में भासित नहीं होता, इसलिए निमित्तों में सुख की कल्पना चलती रहती है। निमित्तों में सुखबुद्धि होने से नैमित्तिक राग–द्वेष रूपी भावों का पक्ष मिटा नहीं पाते।

सूर्य अपनी युवावस्था का तेज दिखा रहा है। धूप से चेहरा तमतमा उठा है और शरीर श्रम–बिंदुओं से लथपथ हो गया है। ऐसी स्थिति में सुध अंजना बेसुध–सी चली जा रही है। कहीं रूककर अल्प विराम लेने की भावना उनके मन में नहीं आ रही है, किंतु अब पग लड़खड़ाने लगे, श्वास फूलने लगी और शरीर भी सक्रियता छोड़ने लगा।

महादेवी के पदाघात की पीड़ा से भी अंजना बार–बार तड़प उठती।

वसंत – अंजना! चोट बहुत गहरी है न!

अंजना – जीजी! हम क्या मोम या मिट्टी के बने हुए हैं, जो छोटी–मोटी राग–द्वेष की रगड़ से, कषायों के घर्षण से आकुलित होते रहेंगे। अरे, जगत की संकीर्ण तुच्छ बुद्धि के पास है ही क्या, सिवाय संकीर्णता और कष्ट देने के। वे अपने स्वभाव से मजबूर हैं।

जिसमें जितनी बुद्धि है, उतना दिया बताय।
उसका बुरा ना मानिये, अधिक कहाँ से लाए।।

क्या हम उस विगत को भूल नहीं सकते? हमारा अमरत्व भी तो इसी में छिपा है। हर परिस्थिति में हम अघट हैं, हममें कोई घटना घटती ही नहीं है – इसी से तो हम आज तक बचे हुए हैं, अन्यथा कभी के मिट चुके होते। इसी से तो हमारा अमरत्व सिद्ध होता है।

वसंत – अंजना! तुम्हारे मन की गति समझ पाना मेरे वश की बात नहीं है।

पूरी तरह से थकने के बाद एक ग्राम में रात्रिवास के लिए रूकने को वे तैयार होती है।

अगले दिन सूर्योदय से पहले ही दोनों अपने अगले पड़ाव की ओर चल पड़ती हैं। रास्ते में मिले भोले–भाले ग्राम्य–जन एवं बालक–बालिकाएँ सभी अंजना के वात्सल्य के पात्र बनते जाते इस प्रकार वह पर्ण–कुटियों, ग्रामों और पुरवासियों में से निरंतर आगे बढ़ती रही।

प्रसव का समय निकट आया जान वसंत अंजना से कुछ दिन एक ही गाँव में रूकने का आग्रह करती है, लेकिन अब अंजना सावधान होकर वन की राह पकड़ लेती है।

अंजना समझाती है – जीजी! हमें जगत का कुछ नहीं चाहिए। हम जगत से विमुख होकर मोक्ष के मार्ग पर चल रहे हैं। स्वभाव से सुभट हैं, अंतर से निर्भय हैं, लेकिन जगत के जीवों के अहंकार एवं कर्तृत्व के पोषण में हमें निमित्त नहीं बनना है, इसलिए अब हमें वन की राह पकड़नी है। एकमात्र संतों की तपःस्थली निर्जन वन ही हमें इष्ट है, वही हमारा वास होगा और इसी दृढ़ता तथा विश्वास के साथ वह आगे बढ़ चली।

अंजना निरंतर अविरल दिशाहीन, किंतु लक्ष्यसहित आगे बढ़ती जा रही है। पैरों में कितने ही काँटे चुभ चुके हैं। कँटीली झाड़ियों में से राह बनाने के कारण शरीर अनेक जगहों से छिल चुका है, इकलौती साड़ी तार–तार हो चुकी है, जिसमें अनेकों स्थानों पर गाँठें लग चुकी हैं, थकावट और भोजन का प्रश्न गौण बनकर एक ओर हट गया है। परसन्मुखता वाले लोगों से अंजना बहुत दूर निकल चुकी है, निर्ग्रंथ दिगम्बर संतों की खोज में।

{9}

भावना यदि अटल और सच्ची हो तो वह फलती ही है और निर्ग्रंथ दिगंबर संतों से मिलने को अति आतुर हृदय, आखिर एक गुफा के निकट संत मुनीश्वर के चरणों को पा ही गई।

जिसे अंतर में एकमात्र अपने निज चिन्मात्र धर्मी की शरण है, उन्हें बाहर से अत्यंत दुखमयी भीषण परिस्थितियों में भी धर्म एवं धर्मात्मा ही एक मात्र अचिंत्य शरण रूप भासित होते हैं। भयंकर विपत्ति एवं अपार संपत्ति के बीच धर्मीजनों का मस्तक तीन लोक में सिर्फ सच्चे देव–शास्त्र–गुरू के चरणों में ही झुकता है।

संयमित अश्रु जो निपट प्रतिकूलताओं में भी जगत–जनों के सामने आज तक कभी नहीं निकले थे, वे अपनेपन की थपकी से उन्हीं मुनि भगवंतों के चरणों में झड़ी बनकर बहने लगे।

इस भक्ति में राग का बहुमान नहीं, राग का पोषण नहीं, राग की पूर्ति का लक्ष्य नहीं, शेष बचे राग को मिटाने की कला सीखने के लिए इन मुनीश्वर भगवंतों के चरणों में मस्तक झुक गया है। अंजना फूट–फूटकर रोने लगी।

अंजना कहने लगी कि अहो! प्रभो आपने जंगल में रहकर आत्मस्वभाव का अमृत निर्झर प्रवाहित किया है। प्रभु आप तो धर्म के स्तंभ हो। साधक दशा में स्वभाव की शांति का वेदन करते हुए परिषहों को जीत कर परम सत्य को जीवंत रखा है। प्रभु आप वीतरागता की मूर्ति हो, देह में वीतराग दशा छा गई है। प्रभो! आप तो जिन–सरीखे ही हो।

दोनों ने चरणों की शरण में शांति, आनंद और निर्भयता का अनुभव किया। सारे दुख कहाँ चले गये, पता ही नहीं चला।

तब वसंत उठी, हाथ जोड़कर अत्यंत विनीत हो भक्तिभाव से गद्‌गद हो निवेदन करने लगी

हे प्रभो! कल्याण सागर, अनाथों के नाथ, हमें दुखों के समुद्र से निकालो।

प्रभो! हमें इस मनुष्य लोक की बस्ती में कहीं भी आश्रय नहीं मिला, मृत्यु के मुँह में भी स्थान नहीं मिला। झूठा कलंक लगाकर मेरी बहिन ससुर गृह एवं पितृगृह निकाल दी गई है। बताने की कृपा करें कि ऐसा कौन पापी जीव है, जो इसके गर्भ में आया है।

चारण ऋद्धिधारी अवधिज्ञानी मुनिराज ने अंजना को वात्सल्य भरे शब्दों में कहा–

पुत्री! शोक न करो। महेन्द्रपुर की राजकुमारी अंजना लोक में शील शिरोमणि है। भोगों से उदास अंजना को जगत का कोई भी वैभव झुकाने में समर्थ नहीं है, इसलिए वह इस लोक के समक्ष दीनता और पामरता का जीवन जीने के लिए असमर्थ थी। तीनों लोकों के समस्त वैभव को सड़े हुए तिनके के समान समझने वाली सतियों की सिरमौर अंजना को संचित पाप के उदय ने चारों ओर से घेर तो लिया है, लेकिन वर्तमान में पाप का परिणाम न होने से आकुलित एवं भयभीत नहीं है और इसके गर्भ का जीव पापी नहीं, वह

तो अद्‌भूत पुण्य का धनी, इस लोक का शलाका पुरुष कामदेव का लुभावना रूप लेकर इस पृथ्वी पर जन्मेगा। वह देवों से भी अजेय होगा, विश्व की सारी विभूतियों का स्वामी होने पर भी वह एक दिन उन्हें ठुकराकर निर्जन वन के पथ पर चल पड़ेगा। इस जन्म के बाद वह कोई और जन्म धारण नहीं करेगा– इसी देह को त्याग कर अविनाशी पद प्राप्त करेगा।

वसंत – ऐसे प्रबल पुण्य का स्वामी गर्भकाल में अपनी माँ को ऐसे भयंकर कष्ट देकर स्वयं भी ऐसी यातनाएँ क्यों झेल रहा है, प्रभो?

मुनीश्वर – कर्मों की लीला विचित्र है पुत्री! अपने पूर्व कर्मों की श्रृंखलाओं में वह जीव भी तो बँधा है, पर इस बार गर्भ में उन कर्मों को नष्ट करने का बल लेकर आया है। इसलिए उपसर्गों से खेलता हुआ वह गर्भ से ही इन कर्मों से निरपेक्ष अपनी अविनश्वर सत्ता को प्रसिद्ध करता हुआ जगत को मूक उपदेश देता हुआ आया है कि किसी को किसी के आश्रय की जरूरत नहीं है।

ऐसे वात्सल्य और करूणा की मूर्ति निर्ग्रंथ योगीश्वर आशीर्वाद देते हुए गमन हेतु तैयार हुए।

अंजना बाहर से पूर्णतया अचेत उन महामुनि भगवंतो की भक्ति के साथ एकाकार हो गई थी। योगी जब चलने को हुए तो अंजना को आघात–सा लगा। वह उन मुनि भगवंतों के चरणों में फिर झुक गई और रूदन भरे कंठ से विनती करने लगी।

मैं विभावों की तपन में, रात–दिन जलती रही।
स्वयं अपने को ही गुरूवर, रात–दिन छलती रही।।
भव अनंतानंत मैंने, जन्म और मरण किया।
स्व–पर भेद विज्ञान बिन, पर भावों में जलती रही।।
निज स्वरूप महान सुखमय, तो कभी न वरण किया।
देव–शास्त्र–गुरू का भी, आदर नहीं मैंने किया।।
वीतरागी भाव से निज, को सजा लूँ अब प्रभो।
गुण अनंतानंत से निज, को सजा लूँ अब प्रभो।।
दृष्टि जग से हट गई! पहचान अब शिव पथ लिया।
हर कदम जिनधर्म पथ पर, चलूँगी यह प्रण लिया।।

हे प्रभो! तीन लोक के कृपासागर! करूणा निधान! आपके जैसा कोई दया का सागर नहीं और मुझ जैसा कोई दया का पात्र नहीं फिर आप मुझे क्या इस भयानक जंगल में अकेली छोड़कर चले जायेंगे?

फिर मुनिराज बोले – प्रभुता को धारण करने वाली अंजना आज दीन स्वर कैसे बोल रही है? लोक में किसे किसका आधार है? आधार और सुरक्षा को बाहर मत खोजो, वे भीतर ही हैं। पंचेन्द्रिय के विषयों में सुखबुद्धि होने से अज्ञानी जीवो की लगातार पंचेन्द्रियों के विषयों की मिठास बनी रहती है, जिसके फल में असाता का रस निरंतर बढ़ता रहता है और इसी के फल में जीव वर्तमान में दुख उठाते हुए भविष्य के असहनीय पंच परावर्तन के दुखों में प्रवेश कर जाते हैं, वहीं भली होनहार वाले जीव धर्मी जीवों की निकटता में उनके ज्ञान वैराग्य को आदर्श बनाकर अपने सुखज्ञान एवं प्रभुता का विश्वास बढ़ाते हुए अनंत काल तक अबाध सौख्य का पान करते हैं।

मुनिराज बोले बेटी, समता को धार के।
मुक्ति को पाना हमको , ममता को मार के ।।
हिम्मत न खोना बेटी, तुम तो बलवान हो।
चेतन भगवान हो तुम, आनंद की खान हो।
उदयों का नाटक देखो, हिम्मत सँभार के ।। मुक्ति।।
मुक्तगामी जीव तेरे, कूख में है पल रहा।
इसी भव से सिद्ध होगा, आनंद उछल रहा।।
चरम शरीरी नाम, होगा हनुमान रे ।।मुक्ति।।
सिद्धों से बातें करते, धन्य मुनि संत रे।
चलते-फिरते सिद्धों से, मुनि भगवंत रे।
अंजना तू सिद्धों जैसी, समता सँभाल रे।

इतना कहकर निर्ग्रंथ दिगंबर संत क्षण भर में ही आकाशमार्ग से गमन कर गये। दोनों ने मुनि की चरण-रज अपने मस्तक पर लगाई और उसी गुफा को अपना निवास बना लिया।

{ 10 }

दोनों थकी-हारी बहिनें अपनी तृण-शय्या पर लेट गईं। कभी किसी वनचर का तीखा स्वर गूँज उठता तो कभी कोई चीत्कार। कभी उपसर्गों की अशुभ आशंकाएँ उन्हें सिहरा देतीं। जाने कब दोनों निद्रादेवी की गोद में

अचेत हो गईं।

ब्रह्म बेला में पंछियों के कलरव-गान से अंजना की निद्रा टूटी, स्वच्छ तन-मन से अंजना आत्मचिंतन में लीन हो गई।

स्वयं के ध्रुव की स्थिरता ने उन्हें अविलंब अपने आवरण में समेट लिया। अंजना का बाह्य अस्तित्व तिरोहित होकर ध्रुव की ध्रुवता से एकाकार हो गया। अहो ! हमारी वस्तु तो अंतर में अभेद ध्रुव.... ध्रुव.... ध्रुव... सामान्य एकरूप चली आ रही है। चाहे जितनी पर्याय आयें परन्तु वस्तु तो सामान्य एक रूप ही चली आती हैं। ऐसे एक रूप की दृष्टि करने पर, उसमें रहे हुये गुणों के भेद का गुण विशेषता का लक्ष्य छूटने और अभेद पर दृष्टि पड़ने पर हमें जो आनंद का आस्वादन हो रहा है उसकी जगत को खबर नहीं।

आसपास उगे फलों से लदे वृक्ष और शीतल झरनों का जल स्वयं के अस्तित्व को बचाए रखने के लिए पर्याप्त थे। वसंत अंजना के रास्ते में लगे घावों को धीरे-धीरे साफ करने लगी। अंजना बोल पड़ी – जीजी! कौन-सी कठोरता से तन-मन छिलना शेष रह गया है, जो तुम्हारे हाथों से छिल जायेगा।

गुफा में ही एक ओर बड़ी भव्य, मनोमुग्धकारी मुनिसुव्रतनाथ भगवान की विशाल पद्मासन प्रतिमा विराजमान है। मुख की कोमलता और साम्यभाव से वीतरागता बरस रही है। प्रतीत होता था कि मानो मूर्ति के होंठ कुछ बोलने ही वाले हैं। ऐसी जीवंत और मनोमुग्धकारी छवि से आँखें हट नहीं पाती धन्य है वह शिल्पी, जिसने कठोर वज्र से पाषाण को आत्मा की पूर्ण पावनता प्रदान करके उसे कोमलता एवं सर्वमंगल की भावना से युक्त करके कल्याणदाता अभयदाता बना दिया। लोक-कल्याण के सारे स्वर उसमें से नि:सृत होकर सारे वातावरण को प्रशांत बना रहे थे।

प्रभु के चरणों में निवेदन के साथ-साथ उस शिल्पी को भी बार-बार वंदन।

शिष्यत्व हो तो गुरू मिलते हैं, भक्ति हो तो भगवान मिलते हैं, संयम की भावना हो तो संयम के निमित्त मिलते हैं।

इस प्रकार से अंजना स्वयं को महा सौभाग्यशाली मानती हुई

जिनचरणों में अत्यंत विनय आदर सहित समर्पित हो गई। भक्ति में लवलीन अंजना अब प्रतिकूलताओं के बीच अपने रचित–स्तवनों का पाठ करती, कहती – अहो ! धन्य है इनकी सर्वज्ञता की महिमा आना, इनकी निकटता में अंतर्दृष्टि से स्वभाव की साधना होना, महिमापूर्वक वीतरागी मार्ग में आगे बढ़ना, राग की तीव्रता को घटाना।

जिनधर्म है कितना सुंदर, अतिपुन्य उदय से पाया।
जीतूं में मोह महा मद, निश्चय उर आज समाया।।

शिवपथ पाया है भगवन, काँटों से नहीं डरूंगी।
संयमधन पाया अंदर, जड़ता का मोह तजूंगी।।
आनंद अतीन्द्रिय धारा, में ही स्नान करूँगी।
भगवन तेरे ही दर पर, समता रसपान करूँगी।।
मुनिसुव्रतनाथ तीर्थंकर, अति पुण्य उदय से पाये।
अंतर्मुख छवि लख सुंदर, संकट के दिवस पलाये।।

एक दिन, दिन–भर के सभी कार्यों से निवृत्त होकर अंजना सामायिक भक्ति करती हुई समता भाव से तत्त्व विचारों में मग्न थी। रात्रि का प्रथम प्रहर हो चला था। अचानक चारों ओर एक भयंकर गर्जना गूँज उठी। दोनों बहिनें एक–दूसरे को सांत्वना देने के लिए कातर दृष्टि से देखने लगीं। इतने में दहाड़ता हुआ एक सिंह गुफा के द्वार पर आ पहुँचा।

उसकी प्रलयकारी गर्जना से सारा वन काँप उठा। दोनों को सन्मुख देख वह और जोरों से गरज उठा, मानो दोनों को फाड़ कर खा जायेगा। दोनों बहिनों का चेहरा एक बार तो सफेद पड़ गया।

वसंत अंजना का हाथ पकड़, दीवार का सहारा ले गुफा में और अंदर की ओर चली गई, मन ही मन उद्विग्न हो गई। अंजना भी समझी कि मृत्यु का क्षण आ चुका है। बोली – बहिन ! मृत्यु सामने खड़ी है। इसको भी हमसे कुछ लेना शेष रह गया होगा। अच्छा है, हम ऋण उतारकर जायें। काया का मोह व्यर्थ है। उन संतों के दिव्य वचन याद करो। उन्होंने कहा था कि रक्षा अंदर ही है, इन पाषाणों में नहीं। जीजी! देर हो जायेगी, कायोत्सर्ग करो। मृत्यु के सन्मुख इस देह को खुला छोड़ दो इसे देह चाहिए, ले जाने दो। संक्लेश परिणामों से मन को मुक्त कर निर्मल परिणामों से स्वरक्षित आत्मा की रक्षा करो।

इतना कहकर अंजना ध्यान में लीन हो गई।

तभी दूसरी ओर से दीर्घाकार अष्टापद छलांग लगाता हुआ भयंकर गर्जन करते आ पहुँचा। सिंह भी एक बार सन्नाटे में आ गया। मेरे सामने मुझसे टकराने वाला यह कौन? देखते ही देखते अष्टापद और सिंह का भयंकर युद्ध हुआ और उसने सिंह को आहत करके भगा दिया तथा स्वयं भी लुप्त हो गया।

अरे, देवता भी धर्मी जीवों की रक्षा करके स्वयं को धन्य मानते हैं। भगवंतों की भक्ति और आत्मा की शक्ति का विश्वास आना ही चाहिए।

भगवंतों की भक्ति से सुख का मार्ग समझ में आता है और पग–पग पर आपत्ति–विपत्ति में रक्षा करने वाले भी मिल जाते हैं और आत्मा की शक्ति समझ में आने से निर्भयता निर्भारता और निशंकता आती है।

भयंकर उपसर्ग टला जान वसंत और अंजना मधुर स्वर में प्रभु भक्ति एवं तत्त्वचर्चा में लीन हो गईं। वास्तव में कभी भी, किसी भी भयंकर परिस्थिति में सच्चे देव–शास्त्र–गुरू का अवर्णवाद न हो, मिथ्या देव–शास्त्र–गुरू की अनुमोदना न हो, सच्चे तत्त्वज्ञान की विराधना न हो, मिथ्याज्ञान की अनुमोदना न हो। प्रमाद, अविवेक, उपेक्षा एवं अहंकार युक्त चर्या का स्वप्न में भी समर्थन न हो।

इस प्रकार श्रद्धान में दृढ़ता और विश्वास बढ़ाती हुई दोनों बहिनें तत्त्वचर्चा में लीन थीं।

तभी अर्धरात्रि के समय भक्ति का सुंदर गान सुनाई दिया।

सावधान रहना प्रतिक्षण ही, सावधान रहना।
पर्यायें बदलें क्षण–क्षण में, मत इनमें बहना।
शुद्ध चिदानंद रूप भूल, इनको मत निज कहना।।
अरे विकल्पों जैसा भी, कुछ कार्य दिखाई दे।
होता हुआ स्वतंत्र समझकर, ज्ञाता ही रहना।।
विषयों में कुछ सुख सा दीखे, भेदज्ञान धरना।
हड्डी में से स्वाद समझ मत, कुत्ते सम मरना।।
ज्ञेयों में से ज्ञान न आवे, निष्पृह ही रहना।
व्यर्थ राग में नही भटकना, ध्रुव दृष्टि धरना।।

दोनों बहिनें समझ गईं कि निश्चय ही कोई देव जो प्रभु की सेवा में रहता है, उसने ही अष्टापद का रूप धरकर हमारी रक्षा की है और अब हमें भयमुक्त करने के लिए प्रभुभक्ति का सुंदर विधान रच रहा है।

वास्तव में मणिचूल नामक एक गंधर्व देव प्रभु की सेवा में तत्पर रहता था। जब उन दोनों बहिनों ने मुनिचरणों में आँसू बहाये थे, तभी से उस देव का द्रवित हृदय हर क्षण उनकी सेवा के लिए सावधान हो गया था, किंतु उस शाम थोड़ी–सी चूक हो जाने से वह घटना घट गई। अत्यंत दुखी होकर पूर्ण सावधानी के साथ वह देव पुनः उनकी सेवा के लिए फिर से तत्पर हो गया।

सच्चे देव–शास्त्र–गुरू के साथ रहने वालों के देवता भी उनके साथ रहकर उनकी दासानुदासता की भावना भाते हैं और देव–शास्त्र–गुरू का समागम छोड़ने वाले जीवन में अकेले रह जाते हैं। उनके दुख बाँटने वाला भी कोई नहीं बचता।

इस प्रकार से दोनों बहिनें अत्यंत निःशंकता एवं प्रसन्नता पूर्वक धर्मचर्चा में तल्लीन हो गईं।

{ 11 }

तभी एक दिन अंजना ने प्रसव की पीड़ा का अनुभव किया। अनिवार्य कष्ट व्यथित कर रहा था। पैरों को, हाथों का सहारा देती, पीड़ा से विह्वल

जमीन पर बैठ गई और छटपटाने लगी। मुख से एक ही शब्द निकला – जी....जी..........!

वसंत तुरंत समझकर सचेत हो गई। अंजना की सेवा–शुश्रूषा में लग गई। सहसा समस्त गुफा रत्नों के प्रकाश से जगमगाने लगी, सारा वन–प्रदेश प्रफुल्लित हो गया, चारों ओर उत्साह–उमंग का वातारण छा गया।

अंजना कहने लगी – वाह रे पुत्र! वाह! नहीं भाया तुझे जन्म लेना आदित्यपुर के राजमहलों में, नहीं भाया तुझे जन्म लेना महेन्द्रपुर के राजप्रासादों में, ऐश्वर्य और वैभव तुझे नहीं सुहाये, तेरे जन्मोत्सव में राजप्रांगण में संगीत की ध्वनियाँ नहीं बज रही हैं। तुझे रागी जीवों की गोद, उनका पालना और उनकी देखभाल नहीं सुहाई, संतों की तपस्थली जैसी पवित्र भूमि के निर्जन वन–प्रदेश में जन्म लेना तुझे सुहाया। वास्तव में यह तेरा अंतिम जन्म है। यथार्थ में तू चरमशरीरी है, तेरे खेल निराले हैं रे! आगे कौन–सा खेल खेलने वाला है बेटा! उस खेल को तू ही जानता है।

इन खेलों में सदा तू तमाशगीर ही रहना, स्वयं को तमाशा नहीं बनने देना।

बादलों–सी हल्की अनुभव करती हुई वसंत गुनगुनाने लगी। स्वर स्वयं निकल रहे हैं, आवेग और आनंद के। आँखों में तैर रहे हैं विगत जन्मोत्सवों के अपूर्व उल्लास और आनंद के राजमहल के चित्र, सजावट, मंगलगान, पुरोहितों के आशीर्वचन– सभी कुछ तो उभर रहा है। उसकी कल्पना की आँखों के सामने।

एक ने मुँह फेरकर अपने आँसुओं को छिपा लिया तो दूसरी ने निश्चिंतता और निश्चय पूर्ण साँस ली।

वसंत ने अंजना को फलों का रस पिलाया और स्वयं भी फलाहार लिया। अंजना की बाल प्रकृति आज खो गई है, चंचलता स्थिर हो गई है। हल्की होकर भी वह मातृत्व की एक अपूर्व गंभीरता की गुरूता का भार अनुभव कर रही है।

भविष्य की अदृश्य दूरियों में उसका मन डूबता चला गया, वह पूछ रही है कुमार पवन से – कहाँ हो तुम ! दुख की किन विभीषिकाओं में उलझ गये हो? क्या कभी रागी जीवों के ममत्व की मृग मरीचिका को तोड़कर लौट

पाओगे, इस राह पर?

वसंत को अब तक केवल प्रसव की चिंता थी। मगर अब चिंता है, क्या है इस बालक का भविष्य? कहाँ हैं कुमार पवनंजय? क्या है अंजना की नियति? किस राह ले जायेगा यह अतुल तेज का धनी बालक? श्री मुनिराज जी ने कहा था, उपसर्गों से खेलते चलना इसका स्वभाव होगा। कब पार करेगा यह उन उपसर्गों को? जाने कब यह बिछुड़े माता–पिता को मिलाएगा? इस भविष्य को न वह मुनिराजजी से ही पूछ पाई और न इस बारे में मुनिराजजी ने कुछ कहा, जाने क्यों?

तभी अचानक!

{ 12 }

तेजी से घूमता हुआ आकाश में एक विमान दिखा और ठीक गुफा के ऊपर वह अटक गया।

एक बार फिर से दोनों बहिनों के हृदय थर्रा गये, क्योंकि विमान तो तभी अटकते हैं, जब या तो कोई पूर्व भव का मित्र अथवा शत्रु हो। यहाँ मित्र अथवा आत्मीय जन का समागम तो कल्पना से भी परे हैं। क्यों कोई आत्मीय इस गहन वन में आयेगा? फिर से किसी बड़े संकट का ध्यान करके वे आत्मस्थ होने लगीं, तभी विमान गुफा के द्वार पर आकर रूका।

उसमें बैठे विद्याधर राजा प्रतिसूर्य के मन में भी यही विचार आया कि अचानक विमान अटका क्यों? शत्रु या मित्र?

जिस प्रकार सच्चा श्रोता देव–शास्त्र–गुरू के प्रति सर्व समर्पण एवं अपनेपन की भावना से आगे बढ़ता है, उसी प्रकार राजा प्रतिसूर्य भी आगे बढ़े। दोनों मानवीयों को एक नन्हें–से बच्चे के साथ देखकर क्षणभर को तो स्तब्ध रह गये, ये दोनों बालिकायें इस सघन वन में कैसे आईं? ये मानवी हैं या अप्सरा? मानवी कैसे आ सकती हैं? अंजना के चेहरे की गंभीरता, अनेक उपसर्गों के बीच निखरी सहनशीलता, संतों जैसी समता–भाव लिये हुए थी। अनेक गुणों से ओत–प्रोत अंजना को देखकर चरणों में सिर को झुकाने का मन हो गया।

बहुत साहस करके, बड़े विनयपूर्वक वात्सल्य से पूछ बैठे– बेटी! मैं

तुम्हारी कुशलता एवं परिचय जानना चाहता हूँ। मुझे समझ में नहीं आ रहा है कि मेरा विमान क्यों अटका? मेरे हृदय में जन्म–जन्म से भरा अद्भुत वात्सल्य स्नेह क्यों उमड़ रहा है? मेरी उत्कंठा शांत करने के लिए पुत्रियों, कुछ कहो। तभी दोनों बहिनों ने भी अंतरंग सामीप्य का अनुभव किया।

वसंत ने कहना आरंभ किया – महेन्द्रपुर की राजकुमारी और आदित्यपुर की राज्यलक्ष्मी अयाचक दृष्टि लिये कितने धैर्य और सहनशीलता से वन–वन विचरती हुई आज आपके सामने उपस्थित हैं। ज्यों–ज्यों वे सुनते जाते, त्यों–त्यों उनके आँसुओं की धारा बढ़ती जाती। अंत में राजा प्रतिसूर्य अर्धमूर्च्छित–अवस्था में लुढ़क पड़े। अरे! फूल–सी कोमल पुत्री ने इतने संकट कैसे सहन किये होंगे? कुछ स्वस्थ होने पर राजा प्रतिसूर्य ने अपना परिचय दिया और कहा कि बेटी! मैं तुम्हारा मामा हूँ। बचपन में एक ही बार देखा था, इसलिए पहचान न सका।

अंजना ने तो चारों ओर से बिलकुल निर्मम और निरपेक्ष होकर वन की राह पकड़ी थी। मानवीय संवेदना से अंजना का कोमल हृदय द्रवित हो उठा। उसने भी मुँह फेरकर आँसू टपका लिये।

फिर बहुत संकोच के साथ वसंत ने अतिथियों के सम्मुख फलाहार प्रस्तुत किया। राजा प्रतिसूर्य ने बहुत सौभाग्य का अनुभव करते हुए फलाहार किया। अंजना ने वसंत के सर्वस्व त्याग एवं कुशल परिचर्या की कथा सुनाकर फिर सभी के नेत्र गीले कर दिये।

युगल राजा–रानी ने मस्तक झुकाकर निःस्पृही संगिनी के समर्पण को बार–बार वंदन किया। मन–ही–मन राजा समझ गये कि इस अंजना के मन को जीतना बहुत ही कठिन है। सारा मानव लोक इस बालिका के प्रति अपराधी है। यदि कुछ संशय आया था तो गुप्तचरों को भेजकर सही जानकारी मँगाने के बाद ही उचित निर्णय लेना था, आदित्यपुर और महेन्द्रपुर के महाराजाओं को। वसंत के मुँह से अंजना की संघर्ष–कथा सुनने के बाद स्वयं की सारी विद्या और पुरूषार्थ की तह काँप उठी। डरते–डरते अत्यंत विनम्र स्वर में राजा प्रतिसूर्य ने निवेदन करने का साहस किया।

बेटी अंजना! जानता हूँ सारा लोक तेरा अपराधी है। मैं भी उसी लोक से बँधा एक मानव हूँ। आज तुझसे उसी तुच्छ संकीर्ण विचारों के जगत में

लौटने के लिए कहने का साहस अब मुझमें नहीं है। तेरे साथ जो अन्याय इस जगत में हुआ है, उसका प्रायश्चित नहीं हो सकता। फिर भी यदि तेरा दयालु हृदय अपने इस दुखी, नि:संतान मामा पर दया कर सके तो हनुरूह द्वीप तुझे पाकर अपना सौभाग्य समझेगा। बोलते–बोलते उनका कंठ भर आया।

मैं जानता हूँ, मेरी नि:स्पृही अयाचीक बेटी को ऐसी कोई वस्तु नहीं है, जो लुभा सके। वैसे ही मेरा जीवन तो सूना और व्यर्थ है। यदि तू नहीं भी चलेगी तो मुझमें अब कुछ भी देखने–सुनने की शक्ति नहीं बची है। अब मेरा जीवित रहना असंभव है। तुझे विवश नहीं कर रहा हूँ। मैं स्वयं विवश हो गया हूँ। इतना कह वे फिर से अंजना के चरणों में नत हो गये। अंजना मन पर नियंत्रण रखती हुई गंभीरता से बोली–

अपराध किसी का किसी के प्रति नहीं है। अपने ही पूर्व जन्म में किये कर्मों का फल है। अपने अर्जित पाप को लोक के माथे पर थोपकर फिर नया पाप करने की शक्ति अब मुझमें नहीं है। एक ही भावना निरंतर रहती है कि ज्ञाता स्वभाव के पक्ष में आकर सपने में भी अपने दुख के लिए, दूसरों को दोष देने का भाव मेरे मन में न आये, अपने दोषों को सहज भाव से स्वीकार करने में साहसी बनूँ और दोषों को निकालने में पुरूषार्थी बनूँ। आत्मा को अपने गुण–दोष देखने का अभ्यास ही नहीं है, पर के दोष देखने का अनादिकाल का अभ्यास है।

दुख है तो सिर्फ इस बात का कि लोक के जो उपकार मुझ पर हैं, उनसे मुँह फेरकर अपने बचाव के लिए इस निर्जन में मुँह छिपाती फिर रही हूँ। भय है तो सिर्फ इस बात का कि कहीं मुझसे देव–शास्त्र–गुरू की, स्वयं की, जीवमात्र की विराधना न हो जाये। आपके स्नेह को न पहचान सकूं, इतनी हृदयहीन भी नहीं हूँ, पर सोचती हूं कि इस जगत में रहने के लिए बहुत अयोग्य हो चुकी हूं। आपके साथ जाकर आपको भी संकट में न डाल दूँ, क्योंकि संकटों में चलने के लिए ही अंजना ने इस जगत में जन्म लिया है। अब आगे जो अच्छा लगे, वह आप जानो मामा जी!

सिंह वृत्ति की धनी है, अंजना सती महान।
नहीं याचना की कभी, चाहे निकलें प्राण।।
वीतराग प्रभु की भगति हृदय वसे दिन रैना

निर्दोषी त्रिभुवन दिखे, ऐसे हों प्रभु नैन
अपराध किसी का क्या देखूं, सब द्रव्य सहज न्यारे–न्यारे।
अनुकूल कहें प्रतिकूल कहें, मोही जन दुखिया बेचारे।।
जड़ कर्म हमें दुख देते हैं, यह तो अनीति की भाषा है।
वे चेतन नहिं बलवंत नहिं, दुख दें झूठी परिभाषा है।।
हे प्रभु! तेरा निर्दोष पंथ, अति पुण्य उदय से पाया है।
मुझसे विराधना सपने में, हो जाये न भय यह आया है।।
सेवा मैं कुछ ना कर पाई, सब मुझे माफ अब कर देना।
जग में रहने के योग्य नहीं, प्रभु शरण आप ही दे देना।।

कहते–कहते अयाचीक और नि:स्पृही वृत्ति की धनी अंजना की आँखें फिर से छलछला आईं। अंजना की आँखों में आँसू देख मानो सारा वन रो पड़ा हो! राजा प्रतिसूर्य अंजना और वसंत शिशु को लेकर विमान में बैठ गये। विमान उड़ चला।

बालक गोद में नहीं सँभल पा रहा था। विमान की गति तेज होने पर बालक उछल पड़ा और विमान से बाहर नीचे जा गिरा। धरा की ओर गिरते बालक को देख अंजना के मुख से चीख निकल गई। अहा रे! क्या तुझे रखने की सामर्थ्य भी मुझमें नहीं ? और मूर्च्छित हो गई।

गिरते बालक पर दृष्टि गड़ाये हुए राजा प्रतिसूर्य ने विमान को नीचे उतारा। नीचे आकर देखा कि वज्र चट्टान पर पड़ा बालक मुस्कराता हुआ क्रीड़ा कर रहा है और जिस पर वह गिरा था, वह चट्टान चूर–चूर हो गई। निर्भय बालक अपना अँगूठा चूसते हुए मुस्करा रहा था। बालक को उठाकर अंजना को देते हुए राजा बोले – बेटी ! निश्चय ही यह पुत्र वज्रवृषभनाराच संहनन का धारी है।

इसके बल–वीर्य से चट्टान तक खंड–खंड हो गई। निश्चित ही यह जीव चरमशरीरी तद्भव मोक्षगामी है।

तब वसंत ने प्रसंगवश मुनिराज की भविष्यवाणी कह सुनाई। सुनकर सभी की आँखें हर्ष से गीली हो गईं। राजा प्रतिसूर्य सहित सभी ने बालक की तीन प्रदक्षिणा देकर नमस्कार करके, श्रद्धा प्रकट की।

हनुरूह द्वीप में जन्मोत्सव के होने के कारण बालक का नाम हनुमान रखा गया। अंजना के पुत्र का जन्मोत्सव स्वर्ग लोक में हुए इन्द्र–जन्म की भाँति मनाया गया। नगर जय–जयकार से गुंजायमान हो गया।

तद्भव मोक्षगामी चरम शरीरी हनुमान की..... जय!

{ 13 }

अंतरंग प्रीतिसहित धर्मी अंजना से मिलने के अत्यधिक हर्ष में विजयी पवन आज आदित्यपुर लौट रहे हैं। अतः धर्मी जीवों को तो लौकिक उपलब्धियाँ अति उपेक्षित ही रहती हैं।

लौकिक जीवों की निकटता में मिलती हैं तृष्णायें! धर्मी जीवों की निकटता में मिलती है तृप्ति। जो अंजना के निकट कुमार पवन पूर्व में अनुभव कर चुके थे।

जब राजा प्रहलाद ने विजयी कुमार के आगमन का शुभ समाचार सुना तो उनके हर्ष का पार न रहा। नागरिकों की प्रसन्नता भी आकाश छू रही है। सारी नगरी कुमार के स्वागत के लिए आँखें बिछाये हुए है।

कुमार के नयन अंजना के महल रत्नकूट प्रासाद पर टिके हैं। प्रासाद के द्वारों पर ताले लगे दिखते हैं, अंजना कहीं दिख नहीं रही। मन शंका से काँप उठा कि कहीं कुछ अशुभ न घट गया हो। खेद और पश्चात्ताप की धारा

अंदर की अंदर बहने लगी, सारी नगरी उन्हें श्मशानवत् दिखने लगी। आखिर किस अहं के बल पर मुझे अंजना की याद नहीं आई। कुमार स्वयं को धिक्कारने लगे।

फिर वे आये माता–पिता के महल की तरफ। माँ तो पहले से भी अधिक प्रसन्न थी। आज ऐकान्तिक रूप से पा जायेंगी अपने बेटे को। सबसे पहले वे उसे जय की टीका लागायेंगी, आरती उतारेंगी।

लेकिन समाचार माँ तक पहुँच चुका है कि कुमार सीधे अंजना के महल रत्नकूट प्रासाद में गये हैं। माँ को विश्वास नहीं हो रहा है, लेकिन कुमार का पहला वाक्य – माँ! देवी कहाँ है, उसके महल का द्वार बंद क्यों है? पीछे भी वह नहीं खड़ी है, क्या नहीं लगायेगी वह मुझे जय–तिलक? शायद तुमने सोचा होगा कि अपशकुन हो जायेगा। मगर माँ, तुम नहीं जानतीं उस रात्रि की वार्ता?

सब अवाक् हैं, किसी के पास कहने को कुछ शब्द ही नहीं हैं। कुमार शंका की कल्पना से मूर्च्छित हो गये। इधर मित्र प्रहस्त ने एक साँस में उस रात्रि की वार्ता माँ को सुना दी।

चेतना आने पर कुमार बोले – ओह माँ! शायद तुम उस पुजारिन को नहीं पहचान पाईं। हम अपने पूज्य को ही नहीं पहचान पाये तो फिर पुजारिन को कैसे पहचानेंगे? पर माँ, दोष तुम्हारा नहीं है।

तुमसे पहले उसकी उपेक्षा मैंने की है। सजा का पात्र भी तुमसे पहले मैं ही हूँ। बोलो न माँ, कहाँ है वह? कहाँ भेज दिया है उसे तुमने ? उसके बिना अब मेरा टिकना असंभव है।

सुन चुकी हूं बेटा! सब सुनकर भी मैं अब तक जीवित हूँ। तुम मुझे जो चाहे सजा दो, अब तुम्हारा कष्ट मुझसे देखा नहीं जा रहा है।

रोओ मत माँ! अपने पापों का प्रायश्चित मैं ही करूँगा। बताओ न माँ, कहाँ है वह?

माँ – बेटा! महेन्द्रपुर, अपने पिता के घर।

मन में विचार चल रहा है। सुख–दुख की एकमात्र संगिनी देवी का अपराधी एक बार फिर से किये चरम अपराध की सीमा को छूकर वापस लौटा

है। प्राणों के लौटाने की आशा लिये द्वार पर खड़ा है। इस बार क्षमा कर देंगी तो अपराध की पुनरावृत्ति नहीं होगी। उसे जड़मूल से ध्वस्त करने का संकल्प लेकर ही लौटा है। अपने अपराधों का बोध होने पर, अपराधों का मूल से छेदन करने का संकल्प लेकर भव्यजीव सच्चे देव–शास्त्र–गुरू के श्री चरणों की शरण में आते हैं। वे जानते हैं कि अति दयालु श्री गुरू न तो रोष करेंगे और न उपेक्षा। वे तो मात्र क्षमा और शांति की मूर्ति हैं, उसी प्रकार वह निराश नहीं करेगी। रोष करना तो उसे आता ही नहीं, वह तो सिर्फ क्षमा और शांति की मूर्ति है।

इस प्रकार कुमार पवन विचार करते हुये महेन्द्रपुर पहुँच गये, पवनंजय का पदार्पण सुन, राजा महेन्द्र स्वागत के लिए आये।

नगरवासी लोगों ने भी बड़े आदर के साथ प्रवेश कराया, परंतु वहाँ भी जब कुमार पवनंजय ने अपनी अंजना को नहीं देखा तो स्वयं निर्जीव की भाँति निश्चल रह गये

फिर किसी प्रकार से वहाँ से निकल कर पृथ्वी पर भ्रमण करने लगे।

पवन विचारमग्न हैं – अक्षम्य है मेरा अपराध ! मैं उसे पाने की बात तो दूर, उसकी छाया भी छूने के योग्य नहीं हूँ। इसी से वह चली गई दूर, बहुत दूर।

फिर सहसा मित्र प्रहस्त से बोले – जाओ! अब तुम्हें कष्ट नहीं दूँगा। जिस लोक में सती को स्थान नहीं मिला, उस लोक में जीकर मैं क्या करूँगा।

प्रहस्त दौड़कर पवन के गले से लिपट गये और बिलख–बिलख कर रो पड़े।

पवन बोले – भैया प्रहस्त! मैंने तुम्हें भाई, मित्र और गुरू के रूप में देखा है। दे सको तो पथ का पाथेय दो, मोहमतदो।

आशीर्वाद दो कि लक्ष्मी को पाकर ही मैं तुम्हारे पास लौटूँ। किसी प्रबल से प्रबल बाधा के सामने भी मैं विचलित न होऊँ और न हार मानूँ। पृथ्वी के अंतिम छोर तक मैं अपनी अंजना को खोजूँगा। यदि कुलाचल भी मेरे मार्ग में बाधा बनकर आयेंगे तो मैं उनका भी उच्छेदन करूँगा।

नक्षत्रों को भले ही अपनी चालें पलटनी पड़ें, किंतु पवनंजय का मार्ग

नहीं रूँधेगा। एक नहीं, सौ जन्मों में सही, पर अंजना को पाकर ही विराम लूँगा।

अश्रुपूरित आँखों से प्रहस्त देखते रह गये। पथ अनंत है, पृथ्वी विशाल है, खोज दिशा शून्य और इच्छित हृदय में बसा क्या शुभ सूर्योदय मंगल प्रभात आयेगा? विरह बादलों को चीरता।

जिस प्रकार भव्यजीव मोहियों की दुनिया छोड़, धर्मी जीवों की खोज में निकल पड़ते हैं, फिर चाहे मार्ग में कोई भी आकर्षण या विस्मय का कोई भी प्रसंग बने, वे विचलित नहीं होते, न मार्ग बदलते हैं और न खोज खंडित होती है। उसी प्रकार कुमार पवनंजय बहुत तेजी से निर्मम–निलेंप बढ़ते ही जा रहे हैं।

गहन अश्रद्धा और विरक्ति से अंतस्तल भर चुका है। इस पृथ्वी का उन्हें विश्वास नहीं रहा, आस–पड़ोस के जगत से मानो सत्य की सत्ता समास हो गई है। चारों ओर वे एक मात्र अंजना का अस्तित्व ही देखना चाह रहे हैं। शेष खोजें नि:शेष हो गई हैं।

रास्ते के गाँव, ग्राम्य से बाहर के पनघट, घाट और सरोवरों के तीर पर बैठ वह जादूगर बन चमत्कार दिखाता। देश–परदेश की विविध वार्तायें सुनाता और दुर्लभ वस्तुयें दिखाता। भान भूलकर पुर–वधुएँ, ग्राम–बालायें उसे घेर लेतीं, मोहित और चकित हो देखती रहतीं। उसकी आँखें दूर पर कहीं जमीं, आँसुओं से भर जातीं।

दिनोंदिन कुमार का उन्माद संज्ञाहीन होता जा रहा है। हृदय की गोपनीय व्यथा अब छिपाये न छिप रही है। सारे जगत के द्वार–द्वार पर घूम–घूमकर वह देव जैसे व्यक्तित्व का धनी युवा, अंजना की दुख वार्ता सुनाने लगा। पूछता कि क्या वह कभी उनके घर आई थी? क्या उन्होंने कंधे पर शिशु लिये हुए एक देवी को देखा है? पूछते–पूछते वह विचित्र पंथी रो देता।

आदित्यपुर की कलंकित निर्वासित राजवधू की करूण–कथा घर–घर में लोग अश्रुपूरित नयनों से सुनते, निजी भेद तत्काल ही खुल जाता। सारे जगत के मुख पर निर्दोष अंजना की खोज में भटकते पवनंजय की कथा तैरने लगी।

समय का भान भूल दिशाहीन भ्रमण करते पवनंजय को

महीनों बीत गये। उन्हे विश्वास हो गया था कि मनुष्य जगत में अंजना का कहीं भी अस्तित्व नहीं है।

दिन बीतते जा रहे हैं। सुबह होती, फिर शाम हो जाती, न कोई नया अंकुर, न हवा में नई सिहरन। अब पवनंजय एक वन में, एक स्थान पर अंजना के ध्यान में स्थिर होकर बैठ गये। निश्चय कर लिया है कि यदि प्राण प्रिया प्राप्त नहीं हुई तो यहीं प्राणों का त्याग कर देंगे।

सहसा कर्णों में एक परिचित–सा स्वर सुनाई पड़ा – पवनंजय!

उन्होंने अपना हाथ पकड़ने वाले निकट खड़े व्यक्ति को देखा। अपरिचित व्यक्ति अनजाना चेहरा, मगर अत्यंत सौम्य–वरदान–सा देता। उसे ताकते रहे, पर पहचान न सके।

प्रतिसूर्य हँसकर, अश्रुभरी आँखों और गीले कंठ से बोले– चौंको नहीं बेटा! मैं अंजना का मामा राजा प्रतिसूर्य हूँ, हनुरूह द्वीप का राजा। अंजना और तुम्हारा आयुष्मान पुत्र मेरे घर पर सकुशल हैं। जबसे तुम्हारे गृह त्याग का वृत्तांत सुना है, अंजना ने अन्न–जल का त्याग कर दिया है। अविलंब चलो बेटा, अन्यथा वह दुखियारी तुम्हारा मुँह देखे बिना ही प्राण त्याग देगी। पवनंजय ने सुना तो उन्हें विश्वास नहीं हुआ।

वृद्ध प्रतिसूर्य की आँखों से अश्रुधारा अनवरत बह रही है। अचानक पवनंजय चिल्ला उठे– अंजना! क्या अंजना मिल गई? अंजना क्या यथार्थ में मुझ पापी के लिए प्राण त्याग रही है?

रोओ मत, बेटा! दुखों की रात्रि बीत चुकी है। अब क्षण भर का विलंब भी उचित नहीं होगा। चलने को जैसे ही उद्यत हुए कि उनकी दृष्टि लज्जित और नतमस्तक पिता और ससुर पर पड़ी। कुमार को अनुभूति हुई कि ये तो स्वयं ही मिट चुके हैं। अब इनके चित्त को दुखी करने से क्या लाभ? दोनों राजपुरूषों ने आकर पवनंजय के पैर पकड़ लिये। पवनंजय पैरों को छुड़ाकर धप से नीचे बैठ गये।

फिर बोले– पिताजी! मैंने आपको बहुत पीड़ा पहुँचाई है। मैं ही तो सभी के कष्टों का कारण बना हूँ। मैं आपका पुत्र हूँ, पर अब बहुत दीन निर्बल तथा अकिंचन हो गया हूँ। क्या आप मुझे मेरे पुराने स्वरूप में नहीं लौटायेंगे। सभी के मन भर आये, आँखें भर आईं, किसी की तो हिचकियाँ भी चलने

लगीं।

सभी ने विमान में बैठकर हनुरूह द्वीप की ओर त्वरित गति से प्रयाण किया।

{ 14 }

महाकष्ट से कुमार पवन विषय–कषाय के पोषक मोहीजनों की बातों में न उलझकर, पुण्योदय की अनुकूलता में न फँसकर, नाना प्रकार के आकर्षणों में न अटककर, शील शिरोमणि धर्मानुरागी अंजना को ऐसे पा गये, मानो जन्म–जन्म के दरिद्री ने चिंतामणि रत्न पा लिया हो!

हृदय में उल्लास के साथ आँखों में हर्ष के आँसू आ रहे हैं।

महासती अंजना स्वयं के निर्दोष स्वभाव की प्रतीति सहित सबको निर्दोष देखते हुए कर्मोदय जनित कौतुक से अत्यंत भिन्न, ज्ञाता रहने वाली, अत्यंत निःस्पृह, गंभीर मुद्रा धारक न कोई आक्षेप न घृणा, न अपेक्षा, न उपेक्षा ऐसी अंजना अपने से अपने में अपने लिये प्रसन्न हो रही है।

पवनंजय – हे कोमलांगी अंजना! तुमने जिस धैर्य और समता के बल से संकटों पर विजय पाई है, तुम्हारे उस पुरूषार्थ के सामने हमारा पुरूषार्थ, वीरता और विजय यात्रा तुम्हारे चरणों में नत हो चुकी है। मुक्ति यात्रा में बाधक तत्वों से बचने के लिए आज हम महापुण्योदय से वर्तमान की अपूर्व विशुद्धि से तुम्हारा संग पा गये हैं। निश्चित ही अब हमारी कर्मों पर विजययात्रा आरंभ होगी। अपनी दुर्बलता से अपने ही अंदर होने वाले सुख के पक्ष से चलने वाले कषाय एवं पापों के एक भी विकल्प के पक्ष में धर्म, धर्मायतन, धर्मी जीवों की उपेक्षा करके नये कर्मों का बंधन नहीं करेंगे, बल्कि जगत के सुखों की उपेक्षा करके धर्मी जीवों की छत्र–छाया एवं स्वधर्मी की सन्मुखता में कषायों एवं कर्मों पर विजय प्राप्त करेंगे। यह हमारी अंतिम जययात्रा होगी। इसके बाद कभी भी हम मूर्ख मोही जनों की बस्ती में नहीं भटकेंगे।

अंजना – हे स्वामी ! अब तो यही एक भावना चल रही है कि न तो किसी का स्वामी बनना है और न किसी को स्वामी बनाना है। हृदय में परद्रव्यों के प्रति प्रीतिरूपी हवा होने पर ही ठोकर मिलती है। अभी तक हमने हर प्रवृत्ति कषाय एवं विषयासक्ति के पक्ष में की है, जिसके फल में असीम दुख मिला है।

अब तो सुख, आनंद, प्रभुता के लिए अपने ज्ञाता एवं अकर्ता स्वभाव का पक्ष एवं महिमा को एक समय के लिए भी विस्मृत नहीं करेंगे, उसी में ही अर्पित रहेंगे।

पवनंजय – वास्तव में जिसने सुख के लिए राग को साधन माना, उसकी मान्यता में यह बात बैठ गई कि जहाँ राग नहीं होगा, वहाँ सुख भी नहीं होगा। राग के बिना अतीन्द्रिय वीतराग सुख होता है, यह बात उसकी श्रद्धा में नहीं आई और जहाँ अतीन्द्रिय सुख की श्रद्धा भी न हो, वहाँ उसका उपाय भी कैसे बन सकेगा? राग के एक विकल्प को भी जीव सुख का या ज्ञान का साधन मानता है। वह जीव इंद्रिय विषयों में ही सुख मानता है और आत्मा के स्वयंभू सुख स्वभाव को नहीं जानता।

अंजना – क्या अद्भुत बात है कि संसार–समुद्र से तरने के लिए एक वर्तमान पर्याय का लक्ष्य यदि छोड़ दे तो वस्तु अकेली शुद्ध ही है। बस, उसी समय आनंद की लहर का अनुभव होता है।

पवनंजय – अंजना ! वास्तव में परोन्मुखता के भाव में आकुलता है तथा अंतर्मुखता के भाव में शांति है।

अंजना – पर्याय में देखना है, अपनी वर्तमान योग्यता और द्रव्य में देखना है, अपना त्रैकालिक सामर्थ्य। पर में तो हमें देखना है ही नहीं। कर्माधीन होकर राग करता है, उस परतंत्रता को भोगने की योग्यता भी उसकी पर्याय में है और उसी समय उस राग से भिन्न द्रव्य स्वभाव की शुद्धता की सामर्थ्य सदा ज्यों की त्यों है – ऐसा देखता है।

पवनंजय – सच कहा अंजना तुमने। जो स्वभाव है, उसकी सीमा नहीं होती, मर्यादा नहीं होती, पराश्रय नहीं होता। अचिंत्य स्वभाव भगवान आत्मा साक्षात् परमात्मा का ही रूप है। अर्थात् जाननहार है, परमात्मा में तथा प्रत्येक आत्मा में कोई अंतर नहीं है। जाननहार रहने से राग टलता जाता है, वीतरागता बढ़ती जाती है।

अंजना – वास्तव में अचिंत्य वस्तु अबंध स्वरूप है, लेकिन उसे दृष्टि में लेना ही तो महान पुरुषार्थ है।

पवनंजय – हाँ! जिस जीव के चित्त में यह बात बैठ जाये कि एक द्रव्य दूसरे द्रव्य को छू ही नहीं सकता – ऐसा वस्तु का स्वरूप है। उसकी दृष्टि

बाहर से हटकर भीतर की ओर जाये, उसी में अनंत पुरुषार्थ है।

अंजना – निमित्त का लक्ष्य एवं निमित्तिक भावों का रस यह भी अज्ञानी जीव की विपरीतता रही है।

पवनंजय – जिसकी दृष्टि निज में नहीं है, वह निमित्त का लक्ष्य कर पर्याय में राग करता है। जैसे भगवान आत्मा राग को नहीं करता, वैसे ही निमित्त भी राग को नहीं करता। हाँ, निमित्त के लक्ष्य से राग हो जाता है।

अंजना – होने योग्य ही होता है – यह भी निश्चिंत, निर्भार, निर्भय रहने का महान मंत्र है।

पवनंजय – अरे! जिनशासन तो अलौकिक है। जो पर्याय होने वाली हो, उसको करना क्या? और जो न होने वाली हो, उसको भी करना क्या? ऐसा निश्चय करते ही कर्तृत्व बुद्धि टूटकर स्वभाव सन्मुखता हो जाती है। सर्वज्ञ त्रिकाल को जानने–देखने वाले हैं, ऐसा मैं भी तीन काल, तीन लोक को जानने–देखने वाला ही हूँ। ऐसे त्रिकाली ज्ञायक स्वभाव का निश्चय करना यही सम्यग्दर्शन है। यही निर्भार रहने की कला है।

अंजना – अरे! वास्तव में जीव ज्ञाता ही है, यही तो अकर्तापने की उत्कृष्टता है। क्रमबद्ध ख्याल में आने पर जो कर्तापने की बुद्धि से थक गया है, वह पर के कर्तापने के अभिमान से थककर आत्मा की ओर आता है।

वास्तव में थके हुए को ही सम्यग्दर्शन होता है। उसको ऐसा नहीं लगता कि मुझे कुछ चाहिए, मैं कुछ करूँ, उससे मुझे कुछ मिले, ऐसी भी अपेक्षा नहीं होती।

पवनंजय – गुण–पर्याय की स्वतंत्रता एवं द्रव्य की महानता लक्ष्य में लेना है, यही मुख्य बात है। प्रत्येक पर्याय की स्वकाल लब्धि देखने से निमित्ताधीन दृष्टि छूट जाती है और द्रव्यस्वभाव की महानता देखने से पर्यायदृष्टि, पर्याय का लक्ष्य छूट जाता है और वस्तु की दृष्टि हो जाती है।

अंजना – यह जीव विश्व को स्वरूप दृष्टि से न देखने पर कोई कारण न होने पर भी अपनी विपरीत दृष्टि होने के कारण पर में इष्ट–अनिष्ट की झूठी कल्पनायें करता हुआ कषायों की भट्टी में जलता रहता है, जिसका अंत मात्र पश्चाताप में ही होता है। यथार्थता का बोध होने पर अपूर्व आनंद के साथ पूर्व में हुए पाप कृत्यों अथवा कषायों में उलझे रहने का भी भारी पश्चाताप हुए बिना नहीं रहता। अरे, अरे! लौकिक राग तो मात्र पाप रूप ही है। लौकिक संगति में तो पापों

का ही पोषण होता है। तत्त्व का प्रेम, धर्मात्मा, साधर्मी, देव–शास्त्र–गुरू–धर्म आदि के प्रति निश्चल वात्सल्य एवं समर्पण ही पुण्य के कारण बनते हैं।

कुछ दिन वहीं रहकर पवनंजय आदित्यपुर अपने राज्य में आये। पिता के दीक्षा लेने के बाद पवनंजय ने राज्य संभाला। फिर एक दिन संसार–शरीर–भोगों से विरक्त होकर दीक्षा लेकर निर्वाण पद प्राप्त किया।

धीरे–धीरे हनुमान युवा हो गये। वे विनयवान हैं, महाबलवान हैं, समस्त शास्त्रों का अर्थ करने में कुशल हैं, परोपकार करने में उदार है, गुरूजनों की पूजा करने में तत्पर हैं, स्वर्ग से भोगने के बाद बाकी बचे पुण्य को भोगने वाले हैं।

उनकी बुद्धि सूक्ष्म थी, वे अत्यंत सुंदर कांति के धारक कामदेव थे, शीलवान एवं सम्यक्त्व के धनी थे। उन्होंने मुनि दीक्षा धारण की एवं माँगीतुंगी से मोक्ष प्राप्त किया।

अंजना ने आर्यिका दीक्षा लेकर समाधिमरण पूर्वक देह त्याग किया, जिसके फलस्वरूप वे स्वर्ग गईं एवं भविष्य में निर्वाण पद प्राप्त करेंगी।

गौतम स्वामी राजा श्रेणिक से कहते हैं कि राजन्! जो हनुमान के साथ नाना रसों से आश्चर्य उत्पन्न करने वाले इस अंजना और पवनंजय के चारित्र को भाव से सुनता है, उससे एक क्षण भी जिनधर्म की विराधना नहीं होती। कर्म करते हुए सावधान रहता है। कैसी भी पहाड़ जैसी प्रतिकूलता आने पर जिनधर्म की ही शरण लेता है, आत्मश्रद्धा को खोता नहीं है, कैसे भी दुख में किसी का सहारा नहीं खोजता, मन को संतुलित रखता है, स्वयं का ज्ञायक स्वयं के पास ही समझता है, उसे अपने अकर्ता स्वभाव का भान हो जाता है और अशुभ कार्यों में उसकी बुद्धि प्रवृत्त नहीं होती, पाप के परिणामों में से सुखबुद्धि निकल जाती है। अपना स्वभाव राग के बिना ही ज्ञान, आनंद एवं सुखमयी भासित हो जाता है।

अपने को ज्ञान मात्र भाव रूप स्वीकारने पर अनुभवने पर आनंद का सागर उछलता है। साथ ही ऐसा बल प्रगट होता है कि सारे कर्म इकठ्ठे होकर आ जायें तो भी भयभीत करने में समर्थ नहीं

द्रव्यदृष्टि के धनी जड़, धन जिन्हें है धूल सम।
भोग जिनको रोग–सम भासें, न सुर सुख चाहिए।।
आत्मवैभव की धनी आराधिका तुम सम कहाँ?
आत्मखोजी सम जगत में और खोजी है कहां?
कर्ता धर्ता है न कोई कैसे किसको दोष दें।
क्यों हुआ कैसे हुआ, जहँ प्रश्न ही नहीं शेष है।।
कभी अनहोनी न होती, होनी क्या टलती कभी।
परिणमन क्रमबद्ध है सब, किसकी क्या चलती कभी।।
धर्म धर्मी देव देवालय ही जिनको इष्ट है।
जिनागम अर समागम से भेंट परम प्रकृष्ट है।
धन्य धर्मी ध्रुव धनी, शिकवा नहीं गिला नहीं।
निःस्पृही जीवन जियें, निःशंक कुछ वांछा नहीं।।
अंजना की आँख से हर्षाश्रु छल–छल बह गये।
कौन किससे क्या कहे, सब कुछ नयन ही कह गये।।
धन्य धर्मी अंजना, पाषाण है या सुमन है।
धन्य तेरा धैर्य माता, धन्य समता धन्य है।।
धन्य हुई यह भरत भूमि, अंजना के जन्म से
धन्य हुई वह गुफा भी, जिसमें चरण तेरे पड़े।
धन्य वासंती सखी सी, सेविका होगी कहां?
धन्य मुनिवर आपसी, करूणा मिले जिसको महां।
पहाड़–सी प्रतिकूलताओं, ने परीक्षा खूब ली।
नहीं दृष्टि डगमगाई, सत् समीक्षा सीख ली।।
दीनता व याचना की, वृत्ति तुझसे काँपती।
मौत भी तुझसे डरी, अध्यात्म विद्या साथ थी।।
प्रायश्चित अरू प्रतिक्रमण आँसुओं ने कर लिया।
कथा पदम पुराण की पढ़कर सहज आनंद हुआ।